श्रीराम जय राम जय जय राम

पण्डित गङ्गाधर पाठक 'मैथिल'

-: श्रीरामभक्ता शबरी ब्राह्मणी थी :-

धर्मब्रह्मशरीराय प्रमाणपुरुषाय च । अदुष्टवन्द्यपादाय करपात्राय ते नमः ॥

धर्मशास्त्रों की परम्परा से अनभिज्ञ महाशयगण कल्पित कविता-कहानी के माध्यम से श्रीरामभक्ता शबरी को शबरजाति की शूद्रा सिद्ध करते आ रहे हैं, जो विचारणीय है । यद्यपि आज के विकृत वातावरण में ऐसे विषयों की उपयोगिता समाप्तप्राय होती जा रही है; तथापि ऐतिहासिक तथ्यों के स्वरूप को सुरक्षित रखना अधिकृत विद्वानों का कर्तव्य है ।

श्रीरामभक्ता शबरी का शबरी नाम भी उसके भीलनी कथने में एक कारण हो जाता है । शबरी शबरजाति की भीलनी को कहा जाता है, जो अन्त्यजों में परिगणित है । भगवान् श्रीराम एवं उनके एतत्कल्पीय अवतारकालीन पात्रों के ऐतिहासिक यथार्थों को समझने के लिए श्रीसीतारामकालिक श्रीमद्वाल्मीकिरामायण ही सर्वसम्मत और सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है । तदुत्तरकाल के जितने भी सपरिकर श्रीसीतारामचरित्र के प्रतिपादक साहित्य हैं, सभी श्रीमद्वाल्मीकिरामायण के ही उपजीवक हैं । श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण ही अन्य सभी श्रीरामचरितपरक साहित्यों का उपजीव्य है । यद्यपि श्रीमद्वाल्मीकिरामायण या इनके टीकाकारों ने शबरी के लिए शूद्रा, भीलनी अथवा ब्राह्मणी होने का स्पष्टतः उल्लेख नहीं किया है; तथापि ब्राह्मणी होने के आधारवचनों की कमी नहीं है ।

श्रीमद्वाल्मीकिरामायण में भगवान् श्रीराम के श्रुतिस्मृत्युक्त धर्मनियन्त्रित शासनतन्त्र का वर्णन है । ''रामो विग्रहवान् धर्मः'' (वा.रा. ३।३७।१३) के अनुसार भगवान् श्रीराम धर्म के साक्षात् मूर्तिमान् विग्रह हैं । ''वेदप्रणिहितो धर्मः'' (श्रीमद्भागवत ६।१।४०) के अनुसार वेदोक्त कर्म ही धर्म हैं और तद्भिन्न हेय कर्म अधर्म कहलाते हैं । धर्मशास्त्र का महत्तम ग्रन्थ मनुस्मृति है, जो ''वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'' वेदानुकूल धर्म का प्रतिपादन करती है । भगवान् श्रीराम की शासनपद्धति का नियामक संविधान मनुस्मृति ही थी । भगवान् श्रीराम ने श्रीमद्वाल्मीकिरामायण ४।१८।३० में स्वयमेव उद्घोष किया है- ''श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ । गृहीतौ धर्मकुशलैस्तथा तच्चरितं मया ॥'' मेरे पूर्वज धर्मप्राण श्रीमनुजी महाराज ने दो श्लोक कहे हैं; जिनका धर्मात्मा लोग पालन करते हैं, मैंने भी तदनुकूल ही आचरण किया है । मनुस्मृति (८।३१६ एवं ३१८) के दो श्लोक जो भगवान् श्रीराम ने कहे हैं, वे श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण से साम्य रखते हैं- ''शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते । अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम् ॥ राजभिः कृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः । निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥'' ये ही दो श्लोक स्वल्पान्तर से श्रीमद्वाल्मीकिरामायण ४।१८।३१-३२ में भी कहे गये हैं- ''राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः । निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥ शासनाद्वाऽपि मोक्षाद्वा स्तेनः पापात्प्रमुच्यते । राजा त्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम् ॥''

(यहाँ 'स्तेन' शब्द अन्य सभी पापों का उपलक्षण है ।) पापयुक्त पुरुषों को राजा द्वारा मृत्युदण्ड या अन्य तथोक्त दण्ड देने से मृतककल्प होकर बच जाने पर भी पापी लोग निर्मल होकर यथाकाल स्वर्ग को प्राप्त करते हैं । पापी पुरुष प्रायश्चित्तरूप राजदण्ड भोगने से या शासनिक निर्णय द्वारा छोड़ दिये जाने से भी पापमुक्त हो जाते हैं; परन्तु यदि राजा अपराधी पर यथोक्त शासन नहीं करता तब उसका पाप राजा को ही लगता है । भगवान् श्रीराम या महर्षि वाल्मीकि ने श्रीमनुजी का नाम लेकर उनके सिद्धान्त को ही अपनी शैली में प्रतिपादित किया है ।

पुन: भगवान् श्रीराम के द्वारा समान कर्म में भी किसी के लिए करुणा और किसी के लिए दण्ड का विधान क्यों ? इसकी समालोचना भी श्रीमद्वाल्मीकिरामायण से ही करनी पड़ेगी, तभी धर्माचरणा शबरी के विषय में विश्वस्त निर्णय का अधिकार प्राप्त होगा । भगवान् श्रीराम का मर्यादापुरुषोत्तमत्व विश्वविश्रुत है । वे मर्यादा का उल्लङ्घन करनेवाले को दण्ड देते ही थे; चाहे वह सर्वपूज्य ब्राह्मण अथवा अवध्या स्त्री ही क्यों न हो । भगवान् श्रीराम के बारे में श्रीवाल्मीकीय रामायण २।२।४६ के अनुसार एक बात यह भी प्रसिद्ध है कि- ''हन्त्येष नियमाद्वध्यानवध्येषु न कुप्यति'' भगवान् श्रीराम धर्मशास्त्रीय नियमों के अनुसार वधयोग्यों को वधदण्ड भी देते हैं; परन्तु अवध्यों पर कभी क्रोध नहीं करते ।

चारों वेदों एवं अन्य शास्त्रों का गम्भीर ज्ञाता होते हुए भी ब्राह्मण रावण ने ब्राह्मणत्व की मर्यादा का हनन किया था; इसलिये भगवान् श्रीराम ने उसे भी वधदण्ड देकर उसका प्रायश्चित्त कर दिया । ताड़का एवं शूर्पणखा स्त्री थीं, परन्तु उन्होंने भी धर्म की मर्यादा का अतिक्रमण किया तो भगवान् श्रीराम ने उन्हें भी यथोक्त दण्ड दिया ही । आततायियों को तदनुकूल दण्ड देकर भगवान् श्रीराम ने मनुस्मृति के ८।३५० वाले सिद्धान्त का ही संरक्षण किया- ''गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् । आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥'' गुरु हो, बालक हो, वृद्ध हो अथवा बहुश्रुत विद्वान् ब्राह्मण ही क्यों न हो; यदि वह धर्मविरोधी आततायी हो तो उसे बिना विचार किये ही वध या वधस्थानीय यथोक्त दण्ड दे देना चाहिए । शास्त्रों में दण्ड्यभेद से शस्त्रास्त्रवधातिरिक्त कई प्रकार के अन्य वधदण्ड भी उपदिष्ट हैं ।

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम ने शास्त्रविरुद्ध तपस्या में प्रवृत्त शम्बूक नामक द्विजेतर को दण्ड दिया । शम्बूक के स्ववर्णधर्मविरुद्ध तपोरत होने के परिणामस्वरूप श्रीराम के धर्मनियन्त्रित शासन में भी एक ब्राह्मणबालक की अकालमृत्यु हो गई; जबकि रामराज्य में ऐसा होना अतिशय चिन्तनीय था । रामराज्य की व्यवस्था में पिता के लिए पुत्रशोक का प्रावधान नहीं था । उसमें भी उनके शासन में किसी स्वधर्मनिष्ठ ब्राह्मण को पुत्रमृत्युजन्य महाविपत्ति में अश्रुपात करना पड़े; यह भगवान् श्रीराम को असह्य था । भगवान् श्रीराम ने विविध विधाओं से इस अनहोनी के कारण का पता लगाया और स्ववर्णधर्मातिरिक्त कर्मों में प्रवृत्त शम्बूक को इसका कारण जानकर धर्मशास्त्रीय संविधानोक्त दण्ड देकर तपोनिवृत्तिपूर्वक उसका उद्धार किया । जिज्ञासु पाठक उत्तररामचरितम् के ''शम्बूको नाम वृषल: पृथिव्यां तप्यते तप: । शीर्षश्छेद्य: स ते राम तं हत्वा जीवय द्विजम् ॥'' आदि को भी देखें । श्रीमद्वाल्मीकिरामायण और रामायणमीमांसा का विशेष मनन करें ।

श्रुतिस्मृत्यादि में चतुर्थवर्ण के लिए द्विजों की परिचर्या का विधान है । मनुस्मृति १।९१ में ''एकमेव तु शूद्रस्य प्रभु: कर्म समादिशत् । एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥'', (शु.य.मा. ३०।५) के ''तपसे शूद्रम्'' में द्विजातिसेवा को ही शूद्र का तप कहा है- ''तप: शूद्रस्य सेवनम्'' (मनुस्मृति ११।२३५), ''परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्'' (श्रीमद्भगवद्गीता १८।४२), ''शूद्रा: स्वकर्मनिरतास्त्रीन् वर्णानुपचारिण:'' (वाल्मीकिरामायण १।६।१९) आदि में स्पष्ट है । तपस्या तो ब्राह्मण का ही स्वाभाविक कर्म है ''शमो दमस्तप: शौचं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्'' (श्रीमद्भगवद्गीता १८।४२) । श्रीमद्वाल्मीकिरामायण उत्तरकाण्ड के ७६वें एवं महाभारत शान्तिपर्व के १५३वें अध्याय में और अन्यत्र भी इस प्रकरण का विशद वर्णन है । भगवान् मनु की बसायी आदिनगरी अयोध्या में मनुस्मृति के अनुसार कानूनव्यवस्था का होना स्वाभाविक था । आज भी इसके बिना रामराज्य की कल्पना सम्भव नहीं । कुछ महाशयों के द्वारा श्रीमद्वाल्मीकिरामायणान्तर्गत इन अध्यायों को क्षेपक कहना सही नहीं । इन अध्यायों पर मान्य टीकाकारों ने टीकाएँ भी की हैं ।

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम वर्णाश्रममर्यादा की रक्षा करते हुए सबको समान और करुणा की दृष्टि से देखते थे । उन्होंने अनेक स्वधर्मनिष्ठ शूद्रभक्तों को अतिशय सम्मान दिया है । निश्चय ही शास्त्र की मर्यादा सबको अभ्युदय और नि:श्रेयस प्रदान करती है; श्रीरामराज्य में उसका पालन अनिवार्य था । इस प्रकार भगवान् श्रीराम ने पक्षपातरहित शास्त्रीय व्यवहार के द्वारा आवश्यक राजकीय नियमों का पालन किया । रामराज्य का शाश्वत संविधान मनुस्मृति ९।२२४ के अनुसार श्रीराम जैसे मर्यादित राजा के द्वारा स्ववर्णाश्रमधर्मभ्रष्ट प्रजा को दण्ड देना अनिवार्य था । स्ववर्णधर्मपालनाभ्यन्तर परिव्रजनतप द्विजश्रेष्ठ का कर्म है, द्विजसेवाधिकृत द्विजेतर का नहीं । पुन: शम्बूक की तपस्या से रामराज्य में भी ब्राह्मणबालकमरणरूप भयङ्कर अनर्थ उपस्थित हुआ और साध्वी शबरी की तपस्या से शबरीसहित ऋषियों का भगवद्दर्शनरूप महान् मङ्गल ही मङ्गल हुआ । इससे भी स्पष्ट होता है कि शबरी ब्राह्मणी ही थी ।

वस्तुत: मनुस्मृति की मर्यादा के अनुसार चलनेवाले भगवान् श्रीराम ने अनधिकृतरूपेण तपोरत द्विजेतर शम्बूक को दण्ड दिया; पर उन्होंने तपोधना शबरी से तपस्या की वृद्धि के बारे में पूछा- ''कच्चित्ते वर्द्धते तप: ?'',''आहारश्च तपोधने !''(वा.रा. ३।७४।८-९) यहाँ शबरी को भगवान् श्रीराम ने 'तपोधना' कहकर आदर दिया है । यदि शबरी शूद्रा होती तो वर्णाश्रमधर्म का संरक्षण करनेवाले भगवान् श्रीराम उसे तपोधना या तापसी (३।७४।१०) नहीं कहते । पुन: इस प्रकरण में शबरी के लिए श्रमणी, धर्मचारिणी, धर्मनिपुणा, सिद्धा, धर्मसंस्थिता (३।७४।६-७), चीरकृष्णाजिनाम्बरा और शंसितव्रता ''शबरीं शंसितव्रताम्'' (३।७४।३१), ''चीरकृष्णाजिनाम्बरा'' (३।७४।३२) आदि विशेषण नहीं देते । आश्चर्य- श्रीकरपात्रीजी को धर्मशास्त्र समझाने वाले शोचनीय प्राणी एतादृश धर्मशास्त्रीय तथ्यों का स्पर्श भी नहीं करना चाहते !

धर्मशास्त्र एवं गृह्यसूत्रादि के अनुसार 'कृष्णाजिनधारण' का अधिकार ब्राह्मण को ही है । पारस्करगृह्यसूत्रीय उपनयनप्रकरण के हरिहरभाष्य में स्पष्ट लिखा है- ''अजिनं धारयेद्विप्र:'' और पारस्करगृह्यसूत्र के भाष्यरूप संस्कारगणपति के पृष्ठ ६७०वें में भी विविध प्रमाणों से ब्राह्मणवर्ण को ही कृष्णाजिनधारण का अधिकारी सिद्ध किया गया है- ''ऐणेयमजिनमुत्तरीयं ब्राह्मणस्य रौरवग्गं राजन्यस्याजं गव्यं वा वैश्यस्य सर्वेषां वा गव्यमसति प्रधानत्वात्'', ''ब्राह्मणक्षत्रियविशां यथाक्रमेण ऐणेयं रौरवमाजं गव्यं वा भवति'', ''ऐणेयेन वाजिनेन ब्राह्मणं रौरवेण क्षत्रियाजेन वैश्यम्'' (आश्वलायन:), ''कृष्णाजिनं ब्राह्मणस्य रौरवं क्षत्रियस्य तु । वस्ताजिनं तु वैश्यस्य सर्वेषां रौरवाजिनम् ॥'' (यमस्मृति:), ''निक्षिप्य ब्रह्मसूत्रं तु वितत्याध: प्रसार्य च । वामांसे स्थापयेच्चैतत्तथा कृष्णमृगाजिनम् ॥'' (शौनक:), ''अंगुलन्तु बहिर्लोम यद्वा स्याच्चतुरंगुलम् । अजिनं धारयेद् विप्रश्चतुर्विंशाष्टषोडशै: ॥'' (रेणुदीक्षितकृतकारिका) आदि । ब्राह्मकर्मविशिष्ट रामाभिधान श्रीहरि के लिए भी क्वचित् कृष्णाजिन और मौञ्जीधारण की चर्चा है; अस्तु ।

शास्त्रोक्त वर्णाश्रमव्यवस्था के सम्पोषक महर्षि वाल्मीकि किसी शूद्रा के लिए कृष्णाजिनाम्बरा आदि विशेषण नहीं देते । महर्षित्व को प्राप्त श्रीमतङ्गजी के द्वारा भी उन्हें तापसी शिष्या के रूप में स्वीकार करना विचारणीय है । महाभारत वाले चाण्डाल मतङ्ग पृथक् हैं । इन सभी तथ्यों से सिद्ध होता है कि किसी पक्ष में श्रमण या परिव्रजनकर्म की कदाचित् अधिकारिणी श्रीरामभक्ता शबरी ब्राह्मणी थी; शूद्रा नहीं । मीमांसामूलक धर्मशास्त्रीय पद्धति से ही यथोचित वाक्यार्थनिर्णय किया जा सकता है । परन्तु वेदनिधि महामीमांसक श्रीकुमारिलभट्ट महाभाग को अज्ञ कह कर अपमानित करने वाले जीव इसे कथमपि नहीं समझना चाहते ।

श्रीमद्वाल्मीकिरामायण में शबरी को ब्राह्मणी सिद्ध करने के लिए अतिशय महत्त्वपूर्ण शब्द 'श्रमणी' आया है- ''श्रमणी शबरी नाम'' (वा.रा. ३।७३।२६) में 'श्रमणी' शब्द का अर्थ सभी टीकाकारों ने 'तापसी' या 'संन्यासिनी' ही किया है । देखें- ''श्रमणोऽश्रमणः'', ''तापसोऽतापसः''(बृहदारण्यकोपनिषद् ४।३।२२) श्रीशङ्कराचार्यजी ने ''श्रमणः परिव्राट्-संन्यासी, तापसः-वानप्रस्थः'' ही इसका अर्थ किया है । ''वातरशना ह वा श्रमणा बभूवुः'' (तैत्तिरीयारण्यक २।७।१),''श्रमणा वातरशनाः''(श्रीमद्भागवत ११।२।२०), ''श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनः'' (श्रीमद्भागवत ११।२।२०),''कुमारः श्रमणादिभिः''(पाणिनीयाष्टाध्यायी २।१।७०) में श्रमणा शब्द संन्यासिनी का वाचक है । कल्पद्रुमकोश एवं मेदिनीकोशकार ने श्रमणी के सुदर्शना आदि अनेक अर्थ देते हुए भी ''शवरीभेदः'' लिखा है; अतः प्रकरणानुसार 'श्रमणी' से रामायणप्रसिद्ध शबरी ही सिद्ध होगी; श्रमणा सुदर्शना नहीं ।

मध्वपरम्परा के मान्य ग्रन्थ महाभारततात्पर्यनिर्णय ५।४५ एवं संग्रहरामायण के नामकोश में भी ''शबरी- शच्या अभिशप्ता अप्सराः'' कहकर शबरी का परिचय दिया है । संग्रहरामायण के ३।६।३४ की टीका में स्पष्टरूपेण शबरी का अर्थ ''शबरीनाम्नी तपस्विनी'' शबरी नाम वाली तपस्विनी ही किया है । भगवान् श्रीराम ने शबरी के यमनियमादि कुशलक्षेम को पूछा है । ३।६।३५वें श्लोक में शबरी को भगवान् में मनोयोगवती योगिनी कहा है । ३।६।३९वें श्लोक की टीका में ''नीचजातित्वेन'' से ''वेदवाक्यश्रवणानर्हा (स्त्री)'' मात्र कहा है । तथापि कुछ महाशय इतने स्पष्टीकरण के बाद भी इसी ग्रन्थ के ''अवैदिक्यै शबर्यै'' ३।६।३९ 'अवैदिकी' शब्द से शबरी को चातुर्वर्ण्य से पृथक् की भीलनी सिद्ध कर रहे हैं ! यद्यपि वैदिक अनुष्ठानों में पति के साथ पत्नी की उपस्थिति वैध होने से त्रैवर्णिकी स्त्री सर्वथा अवैदिकी नहीं होती; तथापि ''वेदवाक्यश्रवणानर्हा'' यज्ञोपवीत और वेद की अनधिकारिणी होने से अवैदिकी कही जाती है ।

इन महाशयों के कपट की और भी बानगी देखें । इन्होंने भविष्योत्तरपुराण वेङ्कटाचलमाहात्म्य के १४।२२५वें श्लोक में कुलाल नामक शूद्र हरिभक्त से कहे ''किमर्थमगमो देव गृहं मे शूद्रजन्मनः । न चाहं विदुरो देवो न चाहं शबरी प्रभो ।।'' श्लोक का असदर्थ प्रसारित कर पाठकों को भ्रमित किया है- ''(प्रवञ्चक का किया अर्थ) कुलाल नामक शूद्र हरिभक्त ने कहा- हे देव ! मैं तो शूद्रकुल में उत्पन्न हुआ हूँ और न तो मैं शूद्र विदुर जैसा ज्ञानी हूँ न ही शूद्रा शबरी जैसा भक्त हूँ । स्पष्ट है कि शबरी भी निम्न वर्ण की थी इसलिए कुलाल ने स्वयं को निम्न वर्ण का बताते हुए निम्नवर्णीय हरिभक्तों की भक्ति का उदाहरण दिया ।''

अब प्रबुद्ध पाठकगण इस प्रपञ्चपर्वत पर वज्रपात भी देखें- महाशयजी ने इसी २२४वें श्लोक के बाद २२५वें श्लोक की प्रथम पंक्ति ''न चाहं गजराजेन्द्रो न चोद्धवविभीषणौ'' को अपनी प्रपञ्चपेटिका में ही छिपाये रखा; क्योंकि उसी शूद्र हरिभक्त के कथन से 'उद्धव' और 'विभीषण' को 'निम्नवर्णीय हरिभक्तों की भक्ति का उदाहरण' की श्रेणी में रखना असम्भव हो जाता । हे राम ! इस तरह से सत्समाज को ठगने वाले कोई सामान्य नहीं; लम्बे नाम वाले महाशय हैं । वस्तुतः यहाँ २२४वें श्लोक के ''शूद्रजन्मनः'' का उदाहरण केवल विदुरजी हैं और 'उद्धव-विभीषण' की तरह शबरी को स्वतन्त्ररूपेण स्त्रीमात्र की बोधिका समझनी चाहिए ।

उक्त महाशय ने स्कन्दपुराण ५।५६।५९ ''व्याधः शबरः सह भार्यया'' का आश्रय लेकर यह भी लिख दिया है- ''स्पष्ट है कि शास्त्र में जहाँ भी शबरी नाम आया है भीलनी के लिए ही प्रयुक्त हुआ है'' घोर अनर्थ है; जबकि मैंने इसी निबन्ध में कई शबरियों का परिचय दिया है ।

पुन: भगवती शबरी को भीलनी बनाने के चक्कर में महाराज को इतना भी भान नहीं रहा कि उनकी परम्परा में शबरी को भीलराजा की राजकुमारी बताया गया है; जो विवाह में होने वाले पशुवध से खिन्न हो अविवाहिता ही श्रमणी बन गयी थी । परन्तु ''आरत काह न करइ कुकरमू'' करपात्रद्रोही महाशय ने उस तापसी शबरी को ''वनवासी व्याध (शिकारी) भील की पत्नी'' बनाने में संकोच नहीं किया ।

उत्तररामचरितम् की ''तत्र (इयम्) श्रमणा नाम सिद्धा शबरतापसी'' इस वाक्य पर टीकाकारों के विभिन्न विचार द्रष्टव्य हैं । कई ने 'श्रमणा नाम' बताते हुए भी 'तपस्विनी' के अर्थ में ही श्रमणा शब्द की व्युत्पत्ति कर दी है- ''श्रमयति तपस्यार्थमात्मानं या सा श्रमणा'' इससे श्रमणा नाम की अपेक्षा शबरी के विशेषण में ही 'श्रमणा' शब्द की सार्थकता सिद्ध होती है । किसी ने ''शबरतापसी'' का 'शबरजातीया तपस्विनी' अर्थ किया है । यहाँ जिस नियम से ''शबरतापसी'' का ''शबरजातीया तपस्विनी'' अर्थ हो सकता है; उसी नियम से ''शबरक्षेत्रीया तपस्विनी'' अर्थ भी सिद्ध हो जाता है । वाचस्पत्यादि कोशकारों ने किरातिनी का ''किरातदेश उत्पत्तिस्थानत्वेन किरातिनी'' किरात देश में उत्पन्न होने के कारण किरातिनी अर्थ किया है । शब्दकल्पद्रुमकार ने ''भिल्लानां प्रियत्वाद् भिल्ली'' भिल्लों के मध्य सम्मान पाने वाली को भिल्ली कहा है । महाभारत भीष्मपर्व ५०।५३ में दक्षिण भारत के एक जनपद को शबर कहा गया है । अत: शबर क्षेत्र में रहने वाली श्रमणी को शबरी कहना सर्वथा उपयुक्त है ।

अब उत्तररामचरित के मूल में ही कई पाठभेद देखें- ''तत्र श्रमणा नाम सिद्धा शबरतापसी'', ''इयञ्च श्रमणा नाम सिद्धा शबरतापसी'', ''इयञ्च श्रमणानाम सिद्धशबरी'', ''इयञ्च श्रमणा नामसिद्धशबरी'' आदि । कोई भी टीकाकार अमुकामुक साहित्यों के आश्रय से स्वेष्ट विचारों को भी प्रश्रय देते हैं । उक्त वाक्य को ''इयञ्च श्रमणा नामसिद्धशबरी'' यह श्रमणा-तपस्विनी भगवन्नामजपसिद्धा शबरी है; इस अर्थ में आपत्ति नहीं । खिष्टाब्द १,९२५ में वीरराघवाचार्य की टीका के साथ निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित संस्करण में ''तत्र श्रमणा नाम सिद्धा शबरतापसी'' पाठ है; परन्तु टीकाकार ने इस पर एक शब्द भी नहीं लिखा है । शकाब्द १,८३५ में हरिदास सिद्धान्तवागीश की टीका के साथ नकीपुर से प्रकाशित संस्करण में ''इयञ्च श्रमणानाम सिद्धशवरी'' पाठ देकर श्रमणा शब्द की व्युत्पत्ति ''श्रमयति तपस्यार्थमात्मानं या सा श्रमणा'' के साथ स्वेष्टार्थ ''तप:सिद्धा काचन नीचजातीयरमणी'' लिख दिया है । तारिणीश झा ने मूल पाठ में 'तापसी' शब्द जोड़कर यही अर्थ लिखा है । खिष्टाब्द १,९६२ में घनश्यामपण्डित की टीका के साथ प्रकाशित संस्करण में ''इयञ्च श्रमणा नाम सिद्धा शबरतापसी'' पाठ दिया है और मात्र ''शबरेषु तापसी शबरीत्यर्थ:'' यानी शबरों के मध्य रहने वाली शबरी अर्थ किया है । खिष्टाब्द १,८६२ में पण्डित प्रेमचन्द्र तर्कवागीश की व्याख्या के साथ बाङ्गला प्रेस से प्रकाशित उत्तररामचरित में ''इयञ्च श्रमणा नाम सिद्धशबरी'' पाठ है; परन्तु व्याख्याकार ने इस प्रकरण की शब्दमात्र भी चर्चा नहीं की है । मौलिक मन्थन किये बिना कुछ का कुछ बकते रहने से निश्चय ही धार्मिक परम्परा की हानि होती है ।

एक-दो हिन्दीकोशकारों ने इसी आधार पर शबरी का नाम श्रमणा लिख दिया है । एक ही वाक्य में तपस्विनीबोधक 'श्रमणा' और 'तापसी' शब्द के प्रयोग से अर्थभ्रम हो सकता है; परन्तु प्रशस्त मूल पाठ ''इयं श्रमणा, नामसिद्धशबरी'' पाठ के ग्रहण से संशय-भ्रम का कोई अवकाश ही नहीं रहता ।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के १।१४।१२वें श्लोक में ''तापसा भुञ्जते चापि श्रमणा भुञ्जते'' एक ही साथ ''तापसा:'' और ''श्रमणा:'' पद प्रयुक्त होने से उत्तररामचरितम् का उभय प्रयोग भी निर्दुष्ट सिद्ध हो जायगा । यहाँ श्रमण के लिए तिलककार ने संन्यासी, रामाभिरामी ने संन्यासी और गोविन्दराज ने भी ''चतुर्थमाश्रमं प्राप्ता: श्रमणा नाम ते स्मृता:'' चतुर्थाश्रमी संन्यासी ही लिखा है । यहाँ एक ही पंक्ति में तापस और श्रमण का अर्थपार्थक्य द्रष्टव्य है । इन विवेचनों से 'शबरी' नाम ही सिद्ध होता है; श्रमणा नहीं ।

प्रलापी ने महावीरचरितम् नाटक के शबरीप्रोक्त ''अहं हि श्रमणा नाम सिद्धा शबरतापसी'' श्लोक की वीरराघवीयटीका ''अहं हीति । शबरी चासौ तापसी चेति'' से श्रमणा नाम सिद्ध करने का प्रयास किया है । परन्तु उत्तररामचरित के समाधान की भाँति यहाँ की भी सिद्धि हो जाती है । वीरराघवीयटीका से तो स्पष्ट ही 'शबरी' नाम वाली तापसी सिद्ध होती है और मूल पाठ ''अहं हि श्रमणा, नामसिद्धा शबरतापसी'' से भी सिद्ध होगा कि मैं शबरी अन्यान्य वैदिक तपोऽनुष्ठानों में अनधिकृत होने से शबरक्षेत्रवासिनी भगवन्नामजपसिद्धा श्रमणा-संन्यासिनी हूँ ।

व्यर्थवादी को पारम्परिक शब्दार्थचिन्तन से कुछ लेना नहीं; परन्तु श्रीकरपात्रादि महामनीषियों का सम्मानमर्द्दन बहुत ही अच्छा लगता है । विवादी महाशय शबरी द्वारा स्वयं के लिए कहे गये 'अधमा' और 'सिद्धा' का रहस्य बताएँ । सावधान- ऐसे प्रलापी लोग विश्वगुरु पद के प्रापञ्चिक प्रलोभन से हनुमत्कथित ''कहहुँ कवन मैं परमकुलीना । कपि चंचल सबही विधि हीना ॥'' और ''अस मैं अधम सखा सुनु'' आदि से ब्राह्मणश्रेष्ठ ''काँधे मूँजजनेऊ साजे'' भक्तराज श्रीहनुमान्जी को भी अधम कुल, नीच जाति या सब विधि हीन सिद्ध करने की कुचेष्टा कर सकते हैं ।

अब अन्य विचारणीय पक्ष है कि उत्तररामचरित या महावीरचरित नाटक के ''श्रमणा नाम शबरी'' को मुख्य प्रमाण माना जाय या श्रीवाल्मीकिरामायण के ''श्रमणी शबरी नाम'' को ? समान शैली में लिखे उत्तररामचरित या महावीरचरित के ''श्रमणा नाम'' की प्रधानता दी जाय या वाल्मीकि के ''शबरी नाम'' की ? प्रबुद्ध पाठक विचार करें । श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण ''श्रमणी शबरी नाम'' ३।७३।२६ की सम्मान्य टीकाओं को भी देखें । कतककार ने ''शबरीत्याख्या श्रमणी-तापसीति विशेषणम्'' लिखा है । तिलककार ने ''शबरी नाम शबरीत्याख्या, श्रमणी तापसी'' स्पष्ट लिखा है । रामाभिरामी ने स्पष्ट ही ''श्रमणी तपोनिरता चिरजीविनी शबरी नाम'' लिखा है । श्रीगोविन्दराज ने तो और भी स्पष्ट करते हुए ''श्रमणी संन्यासिनी शबरीति शबरीति प्रसिद्धा'' शबरी नाम वाली श्रमणी यानी संन्यासिनी लिख दिया है । इतने प्रामाणिक स्पष्टीकरण के बाद भी शास्त्रपरम्परा के साथ विगर्ह्य बलात्कार करते रहना सही नहीं ।

श्रीवाल्मीकिजी अन्यत्र भी इस शैली में नाम लिखते हैं- ''अयोध्या नाम नगरी'' १।५।६, ''गुहो नाम''२।५०।३३, ''रावणो नाम'' ३।४८।२, आदि । अत: विविधविधया ग्रन्थमन्थन से श्रीरामभक्ता भगवती शबरी का शबरी नाम ही सिद्ध होता है; श्रमणा नहीं । श्रमणा नाम रटनेवाले सहस्र नेत्रों से देखें । अनेक दृष्टियों से श्रीरामभक्ता शबरी शबरजाति की न होकर केवल शबरी अभिधान वाली ब्राह्मणी थी, प्रमाणत: यही सिद्ध है ।

पुन: रामायण में निषाद एक जाति का नाम है, पात्र का नाम गुह है; अब शबरी शब्द यदि जातिनाम माना जाय तो उस श्रीरामभक्ता का नाम क्या ? यद्यपि कुछ लेखकों ने शबरी को भीलनी बनाने के दुराग्रह में श्रमणा नाम की कल्पना कर ली है; परन्तु कोई प्रामाणिक ठोस आधार नहीं होने से यह परम्पराग्राह्य नहीं हो सका । मैंने इस असत् प्रवाद का सयुक्ति-प्रमाणत: शब्दश: निराकरण कर दिया है; सुहृदय प्रबुद्ध पाठक धैर्य से पढ़ें और स्वयमपि निर्णय करें ।

श्रीमद्भगवद्गीता १८।४५ ''स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः'' की तात्पर्यचन्द्रिका में श्रीवेङ्कटनाथजी ने तथा ब्रह्मसूत्र १।३।३८ की न्यायरक्षामणिटीका में श्रीमदप्पय्य दीक्षितजी ने ''धर्मव्याधादयोऽप्यन्ये पूर्वाभ्यासाज्जुगुप्सिते । वर्णावरत्वे सम्प्राप्ताः संसिद्धिं श्रमणी यथा ॥'' श्लोक उद्धृत किया है । यह १०५ अध्याय वाले 'विष्णुधर्माः' ग्रन्थ में है । इस श्लोक के साथ ही श्रीदीक्षितजी ने स्पष्ट कर दिया है कि ''इति हि स्मरन्ति ब्रह्मज्ञानमपि तेषाम्'' । अतः यहाँ 'धर्मव्याधादयः' के लिए ही 'सम्प्राप्ताः' क्रियापद इष्ट है; 'श्रमणी' शब्द तो ब्रह्मविद्यानधिकारी अवरजातीय विदुरधर्मव्याधादि की तरह ब्रह्मविद्यानधिकारिणी अवरजातीया स्त्रीमात्र में विशेष का द्योतक है । ब्रह्मविद्या के अनधिकारी अवरजातीय विदुरधर्मव्याध के बाद 'आदि' पद में सामान्येन ब्रह्मविद्यानधिकारिणी स्त्री ही तो आ सकती है । अतः इस पद्य के 'श्रमणी' से शबरी को शूद्रा सिद्ध करना उपयुक्त नहीं । इन मनीषियों ने भी वर्णाश्रमतपोनिष्ठ विदुरादि के लिए द्विजेतर 'शम्बूक' की तरह तपस्या का वर्णन नहीं किया है । यद्यपि भगवान् श्रीराम ने तादृश तपोऽनधिकृत 'शम्बूक' को यथोक्त दण्ड देते हुए भी भगवद्दर्शनरूप महान् फल प्रदान कर उसका उद्धार ही कर दिया ।

अब पुनः धर्मशास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार यह विचारणीय है कि प्रव्रजन या संन्यासकर्म में अधिकार किसका ? आज के परिवेश में किसी भी साधन से लौकिक सुख-सुविधामात्र को प्राप्त करनेवाले शास्त्रसिद्धान्तविहीन व्यक्तियों की बात छोड़ दी जाय और सनातनपरम्परा से विचार किया जाय तो प्रव्रजन या संन्यासकर्म में ब्राह्मण का ही अधिकार सिद्ध होता है; अन्यों का नहीं- ''ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात्'' (मनुस्मृति ६।२८), ''परिव्रज्याश्रमप्राप्तिर्ब्राह्मणस्यैव चोदिता'' (विष्णुस्मृति ५।१३), ''ब्राह्मणस्याश्रमाश्चत्वारः'' (वैखानसगृह्यसूत्र १।१।१०-१२), ''चत्वार आश्रमाश्चैते ब्राह्मणस्य सदैव हि'' (शुक्रनीति ४।३४०), ''वर्तयन्त्योऽन्यथा दण्ड्या या वर्णाश्रमजातयः'' (शुक्रनीति ४।३४२) यहाँ तो स्पष्ट ही ब्राह्मणेतर को संन्यासाश्रम ग्रहण कर लेने पर दण्ड का विधान किया है । अतः धर्मशास्त्रों में द्विजेतर के लिए संन्यासाश्रम का विधान नहीं है । इससे भी रामराज्य की तपस्विनी शबरी का ब्राह्मणी होना निश्चित हो जाता है । कुछ धर्मनिबन्धकारों ने कृतादि युगत्रय में द्विजमात्र के लिए लिङ्गरहितसंन्यास का विधान किया है; परन्तु कलियुग में ''संन्यासप्रतिषेधस्तु कलौ क्षत्रविशोर्भवेत्'' (मलमासतत्त्व) ब्राह्मणातिरिक्त वर्णों के लिए उसका भी निषेध कर दिया है । यदि शबरी द्विजेतर होती तो त्रेता के रामराज्य में उसका श्रमणी होना वैध नहीं होता । कलियुग में शुद्ध वैराग्य का अभाव होने से ब्राह्मणों के संन्यास में भी ''कलिवर्ज्य'' वाली ऊहापोह की स्थिति बनी रहती है ।

अब श्रमणी शबरी के संन्यास पर विचार किया जाय तो स्त्री को भी संन्यास का वैध अधिकार नहीं; अतः इसे गार्गी आदि ब्रह्मवादिनी ब्राह्मणी स्त्री की तरह अपवाद समझना चाहिए । कदाचित् ऐसे अपवादस्वरूप संन्यास का अधिकार प्राप्त कर लेने पर भी स्त्रियों के लिए वेदाधिकारप्रद यज्ञोपवीत का धारण और वैदिकयज्ञों का विधान नहीं है । ''पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते'' के 'पुराकल्पे' और 'इष्यते' का तात्पर्य पृथक्तः विचारणीय है । कहीं द्विजेतर और पुरुषेतर का वेदश्रवण दीखे तो वहाँ ''नाट्यसंज्ञमिमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्'' (नाट्यशास्त्र १।१५) नाट्यशास्त्र अथवा पुराणेतिहासरूप पञ्चम वेद का ही श्रवण समझना चाहिए । पुनः कई वैदिकसम्प्रदाय के संन्यासियों के लिए यज्ञोपवीत और अग्नियों का त्याग भी विहित है । स्त्रियों का विवाह ही उनका उपनयन होता है । अतः वैधव्य या पतिसम्बन्ध का त्याग कर देना ही यज्ञोपवीतत्यागरूप उनका संन्यास है ।

रामायण, महाभारत, पुराणादि में ब्राह्मणवर्णेतर श्रवण की शूद्रा माता, कौशल्या, सीता, कुन्ती, गान्धारी, सगरभार्या, द्रौपदी, सत्यभामा, सत्यवती, उत्तरा, अम्बा, शिखण्डिनी आदि के लिए तपस्विनी शब्द आया है; परन्तु इनमें कोई भी शबरी की तरह कृष्णाजिन धारण करनेवाली गृहत्यागिनी 'वनाश्रमवासिनी श्रमणी' संन्यासिनी नहीं थी । ये सभी महादेवियाँ अपने गृह में पति-पुत्रादि के साथ रहते हुए पातिव्रत्यादि शास्त्रोक्त स्वकर्तव्यरूप तप का पालन करनेवाली तपस्विनी थीं । कोशकारों ने भी स्ववर्णाश्रमविहितकर्मसम्पादन को तप कहा है । चित्तप्रसादहेतुभूत व्रतनियमोपासनादि कर्मों को भी तप कहा है । आदि ...

अन्य विचारणीय पक्ष में भी यदि शबरी को भिल्लजाति की मान ली जाय, तो वह शूद्रवर्णा न होकर अस्पृश्य अवर्ण या अन्त्यजों में चाण्डाल या म्लेच्छ मानी जायगी । व्यासस्मृति १।१२-१३ आदि में शबरजाति अन्त्यज में परिगणित है । ''निषादश्वपचावन्तेवासिचाण्डालपुक्कसा: । भेदा: किरातशबरपुलिन्दा म्लेच्छजातय: ।।''(अमरकोश२।१०।२०),''स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवा:'' (श्रीमद्भागवत २।७।४६) में भी शूद्र से पृथक् ही शबरजाति को रखा गया है और वह अस्पृश्य चाण्डाल है । महाभारत शान्तिपर्व २०७।४२ में शबर को म्लेच्छ जाति माना है । अनुशासनपर्व ३५।१७-१८ एवम् आश्वमेधिकपर्व २९।१५-१६ के अनुसार शबर पहले क्षत्रिय थे; कालान्तर में वृषलत्व को प्राप्त को गये थे । अत: जो श्रीरामभक्ता शबरी को शूद्रा कहते हैं; उन्हें धर्मनिपुणा तपस्विनी शबरी को अस्पृश्या चाण्डाली या म्लेच्छा कहने के लिए बाध्य होना पड़ेगा । परन्तु ऐसा नहीं; भगवान् श्रीराम ने शबरी के स्पर्श और उनके द्वारा प्रदत्त जलाचमन आदि को सहर्ष स्वीकार किया है । ब्रह्मवैवर्त्तपुराण ने ''गोपनापितभिल्लाश्च .... सच्छूद्रा: परिकीर्तिता: ।।'' किसी भेद के भिल्लजाति को सच्छूद्र में रखा है ।

अब यदि यह शङ्का हो कि भगवान् श्रीराम ने निषादराज गुह का आलिङ्गन किया, जो अमरकोश २।१०।२० के अनुसार चाण्डाल की श्रेणी में आता है; तब चाण्डाली शबरी के चरणस्पर्श में आपत्ति क्यों ?

इसका समाधान है- निषाद दो प्रकार का होता है- अनुलोमज और प्रतिलोमज । प्रतिलोमज निषाद चाण्डाल एवं अस्पृश्य होता है, अनुलोमज नहीं । अनुलोमज निषाद का दूसरा नाम 'पारशव' है और वह नौकाजीवी होता है (मनुस्मृति १०।८, १०।३४), वाल्मीकिरामायण के अनुसार भी वह नौकाजीवी ही है । रामायणीय निषाद अनुलोमज होने से स्पृश्य है, अस्पृश्य प्रतिलोमज नहीं । तथापि भगवान् श्रीराम ने वाल्मीकिरामायण २।५०।४३ के अनुसार निषाद से कोई वस्तु नहीं ली- ''यत्त्विदं भवता किञ्चित्प्रीत्या समुपकल्पितम् । सर्वं तदनुजानामि नहि वर्ते प्रतिग्रहे ।।'' श्रीराम ने सप्रेम निषाद से कहा- तुमने जो कुछ दिया है, उसका सम्मान करता हूँ; परन्तु उसे ले नहीं सकता ''नहि वर्ते प्रतिग्रहे'' एवं श्रीवाल्मीकिरामायण २।५०।४३ के अनुसार लक्ष्मणजी से जल-फल मँगाकर ग्रहण किया । इधर भगवान् श्रीराम ने तो शबरी का जल, फल एवं आचमन भी स्वीकार किया; इससे भी शबरी का ब्राह्मणी होना सिद्ध होता है ।

तिलकटीकाकार ने ''मया तु सञ्चितं वन्यम्'' वाल्मीकिरामायण ३।७४।१७ की व्याख्या में पद्मपुराण का वचन उद्धृत कर कहा है ''फलानि च सुपक्वानि मूलानि मधुराणि च । स्वयमासाद्य माधुर्यं परीक्ष्य परिभक्ष्य च ।। पश्चान्निवेदयामास राघवाभ्यां दृढव्रता । फलान्यास्वाद्य काकुत्स्थस्तस्यै मुक्तिं परां ददौ ।।'' श्रीगोविन्दराज के अनुसार भी शबरी ने पूर्व से ही ''तत्तत्फलजातीयं माधुर्यं परीक्ष्य'' तत्तत्फलजातीय वन्य फल-मूलों के माधुर्य का स्वयं परीक्षण करके श्रीराम-लक्ष्मण को

मधुरातिमधुर फल-मूल समर्पित किया और दोनों भाइयों ने बड़े प्रेम से उनका आस्वादन कर उस तापसी को परमपद प्रदान किया । यद्यपि अन्त:प्रेम की विह्वलता में कदाचित् विधि-निषेध कुण्ठित भी हो जाया करते हैं तथापि यहाँ विधिवत् पूजा करनेवाली शबरी के द्वारा श्रीराम-लक्ष्मण को उच्छिष्ट खिलाने की कल्पना नहीं की जा सकती । यद्यपि भगवान् श्रीराम को अधमोत्तम जात्यादि से विरोधानुरोध नहीं है- ''मानहुँ एक भगति कर नाता'' वे निश्छल प्रेमभक्ति के वशीभूत हैं; तथापि वे मनुस्मृति के अनुसार वर्णाश्रममर्यादा का पालन करने में प्रमाद नहीं करते । पुन: भगवान् ही सभी जीवों के अन्त:करण में सब कुछ के भोक्ता हैं, परन्तु महर्षि वाल्मीकि ने वर्णाश्रम की मर्यादा के परिपोषक के रूप में ही एक दिव्य महामानव का चरित्रचित्रण किया है; इसमें भगवान् श्रीराम का किञ्चिदपि मर्यादोल्लङ्घन उपयुक्त नहीं । उच्छिष्टानुरागी यह क्यों नहीं बताते कि प्रेम में पागल भई शबरी भगवान् का भी उच्छिष्टप्रसाद खा रही है; इसमें तो दोष भी नहीं होता । भगवान् श्रीराम को शबरी का उच्छिष्ट खिलाने में अतिक्रमित उत्साह क्यों ?

विचारणीय- श्रीमद्वाल्मीकिरामायण ३।७४।७ ''पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद् यथाविधि'' एवम् अध्यात्मरामायण ३।१०।८ ''सम्पूज्य विधिवद् रामम्'' के अनुसार धर्मनिपुणा शबरी के 'यथाविधि' और 'विधिवत्' पूजन में उच्छिष्टार्पण का विधान कहाँ से आ गया ? अस्तु । इस प्रकरण में कुछ प्रलापी श्रीराम के लिए 'कभी मनुष्य, कभी ईश्वर, कभी भगवान्, पुन: मनुष्य' का गीत गाते हुए यह भूल जाते हैं कि यहाँ भगवान् श्रीराम-लक्ष्मण की ईश्वरता या मनुष्यता के विवेचन का विशेष प्रयोजन नहीं; भगवती शबरी के द्वारा 'यथाविधि' और 'विधिवत्' पूजन का विचिन्तन अपेक्षित है । यदि श्रीराम-लक्ष्मण के 'यथाविधि' और 'विधिवत्' पूजन में स्वयं के उच्छिष्ट समर्पण का विधान उपलब्ध हो तो प्रलापी के असत्प्रलाप पर भी कुछ विचार किया जा सकता है । धर्मज्ञमन्य महाशय शास्त्रमर्यादा को बिगाड़ने की कुचेष्टा न करे ।

अन्यान्य रामायणों को भी देखें । विचित्ररामायण के अनुसार ''जेते फलमूल थोइ थिला । राम आगे थोइ पूजा फला ।।'' रङ्गनाथरामायण के अनुसार ''शबरी ने वन के कन्द-मूल-फल उन्हें दिये और उन्होंने उन्हें खाया ।'' सीतारामायण के अनुसार ''शबर्या दत्तमन्नं भुक्त्वा तस्यै मोक्षमदिशत् ।'' आनन्दरामायण के अनुसार ''साऽपि सम्पूज्य श्रीरामं विशेषैर्वनसंभवै:'' शबरी ने वन के फल-पुष्पों से श्रीराम का पूजन किया । इसके बाद शबरी के कहने पर राम-लक्ष्मण ने पम्पासरोवरतट के सुन्दर फलों को खाया । अध्यात्मरामायण के अनुसार भी ''सम्पूज्य विधिवद्रामं ससौमित्रिं सपर्यया । संगृहीतानि दिव्यानि रामार्थं शबरी सदा ।।'' शबरी नित्य ही भगवान् के लिए दिव्य फल लाकर रखती थी । एकनाथरामायण ''यथाविधि'' और गोस्वामीजी ने भी ''कन्दमूल फल सरस अति'' ही लिखा है । उच्छिष्ट खिलाने की कहीं प्रामाणिक चर्चा नहीं । तथापि आश्चर्य; उच्छिष्टप्रेमियों को विधिवत् सपर्या में भी उच्छिष्टसमर्पण बहुत अच्छा लगता है । पुन: ''यथाविधि या विधिवत्' प्रयोग से यह भी सिद्ध होता है कि शबरी इतनी विकृत भी नहीं हो गई थी जो श्रीराम को अपना उच्छिष्ट समर्पण कर दे । यदि शबरी के उच्छिष्टार्पण को ही सही मान लिया जाय तो 'यथाविधि' और 'विधिवत्' का प्रयोजन ही क्या रह जायगा ? अत: शबरी ने भगवान् श्रीराम का विधिवत् पूजन किया । उच्छिष्ट के अर्थ भी बहुत हैं । बहुविध शास्त्रीय विचारों से यही सिद्ध होता है कि श्रीवाल्मीकिरामायण की शबरी न तो भीलनी थी और न ही भगवान् श्रीराम को अपना उच्छिष्ट ही खिला रही है । एतदर्थ करपात्रद्रोही महाशय अन्यत्र भटकते रहने की अपेक्षा प्रामाणिक टीकाओं के साथ मात्र श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का आश्रय लेते तो अच्छा होता । परन्तु उन्हें तो दलबल के साथ शबरी को भीलनी ही सिद्ध करना है !

अस्तु; शबरी नाम से शबरी को भिल्ली समझने वाले महाशयों के लिए ऐसे नाम के अन्य भी अनेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं; यथा-

(१) मीमांसादर्शन के प्रौढ़तम भाष्यकार मैथिलमनीषी महापण्डित श्रीशबरस्वामी- जिनके ब्राह्मण होने में कोई सन्देह नहीं; अद्यपर्यन्त किसी अन्वेषक ने 'शबर' नाममात्र से उन्हें भिल्ल या चाण्डाल सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया है ।

(२) स्कन्दपुराण के महेश्वरखण्डान्तर्गत केदारखण्ड (३५।१२) में- ''एवमुक्त्वा तदा देवी गिरिजा सर्वमङ्गला । शबरीरूपमास्थाय गन्तुकामा महेश्वरम् ॥'' भगवती गिरिजादेवी भी शबरी के रूप में प्रकट हुई हैं । ''प्रबद्धो हि महादेवो निरीक्ष्य शबरीं तदा'' (३५।१८), ''उवाच वाक्यं शबरीं प्रस्ताव सदृशं महत्'' (३५।२२) आदि स्थलों में भगवान् शिव ने ही शबरी को वरारोहा, वरानना, अरण्यवासिनी, धर्मप्राणा, भामिनी, तपस्विनी, विशालाक्षी और सुमध्यमा आदि कहकर सम्बोधित किया है । जिनकी उपासना आज भी अतिशय श्रद्धा से की जा रही है । यहाँ पर शबरीरूपधारिणी भगवती गिरिजा शबरजाति वाली चाण्डाली सिद्ध नहीं होती । भगवान् शिव ने भी कभी शबर या किरात का रूप धारण किया था ।

(३) तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थ 'आगमरहस्यम्' के भैरवप्रोक्त 'श्रीरेणुकास्तोत्र' में भिल्लीवेषधरा शबरी के रूप में भगवती रेणुका का ध्यान किया गया है-

मध्ये बद्धमयूरपिच्छनिकरां श्यामां प्रबालाधरां
गुञ्जाहारधरां धनुश्शरकरां नीलाम्बरामम्बराम् ।
शृङ्गीवादनतत्परां सुनयनां मूर्द्धालकैर्बर्बरां
भिल्लीवेषधरां नमामि शबरीं त्वामेकवीरां पराम् ॥
लोलल्यालिलसत्प्रफुल्लसुमनो जालोल्लसत्कानने
भिल्लीवेषमनङ्गवेगजनकं धृत्वा चलन्ती शनैः ।
लोलापाङ्गतरङ्गरङ्गसुदृशा सम्मोहयन्ती शिवं
चञ्चच्चञ्चलनूपुरध्वनियुता वर्वर्ति सर्वार्थदा ॥

यहाँ भी भिल्ली शबरी के वेष में वन में निवास करनेवाली भगवती एकवीरा रेणुका का ही वर्णन प्राप्त होता है । केवल शबरी नाम एवं भिल्लीवेषधरा होने से भगवती एकवीरा या रेणुका शबरजाति की अन्त्यजा सिद्ध नहीं होतीं ।

किरात या भिल्ल के वेष में कुछ समय व्यतीत करने पर भी श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के कर्ता महर्षि वाल्मीकि किरात या भिल्ल सिद्ध नहीं हो सकते, जन्मना ब्राह्मण होने के कारण कालान्तर में भी वे ब्राह्मण ही रहे ।

(४) पुनः श्रीमहासरस्वतीसहस्रनामस्तोत्रम् के २०वें श्लोक में भी भगवती महासरस्वती का एक नाम 'शबरी' आया है- ''शिवेतरघ्नी शबरी श्रवणीयगुणान्विता'' एतादृश स्थलों में शबरी नाममात्र उपलब्ध होने से इन महादेवियों को शबरजाति की चाण्डाली कह देना अनुचित है । अधिकतम देवीनामावलियों में शबरी नाम आया है; सबको भीलनी बना देना सही नहीं ।

श्रीरामचरितमानस में प्रसङ्गवशात् कैकेयी को भी ''विधि कैकई किरातिनि कीन्हीं'' किरातिनी या भीलनी कह दिया गया है । श्रीरामचरितमानस में भीलजातिभिन्न पात्रों के लिए कई बार किराती, किरातिनी, भिल्लनी, भिल्लिनि शब्द आये हैं । करपात्रद्रोही महाशय किरातिनी, भिल्लिनी शब्द मात्र से भगवती कैकेयी आदि को किरातिनी-भिल्लिनी सिद्ध करेंगे क्या ?

पुनरपि एक प्रश्न होता है- शबरी यदि ब्राह्मणवर्ण की है तो उसे कहीं-कहीं 'अधमजन्मा', 'जातिहीना', 'हीनजन्मा', 'अघजन्मा' आदि क्यों कहा गया है ?

इसका समाधान श्रीमद्भगवद्गीता में किया है- ''येऽपि स्युः पापयोनयः । स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्राः'' ब्रह्मानन्दजी ने 'स्त्रियः' का ही अर्थ 'शबर्यादीनाम्' लिखा है । श्रीमद्भागवत २।७।४६ में ''स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः'' तथा इसी का अनुसरण गोस्वामिपाद ने श्रीरामचरितमानस में शबरी के कथन ''अधम ते अधम अधम अति नारी'' से किया है । भगवती अनसूया की पंक्ति ''सहज अपावनि नारि'' भी विचिन्तनीय है । अध्यात्मरामायण के ''प्रसन्नेऽधमजन्माऽपि शबरी मुक्तिमाप सा'' के 'अधमजन्मा' में भी इसी प्रकार से संगति लगानी चाहिए । यज्ञोपवीत की अनधिकारिणी होने से ही उसे कहीं 'शूद्रा', कहीं 'शूद्रसदृशी' और कहीं 'हीनवर्णा' आदि कहा गया है । इसी रीति से शबरी के लिए प्रयुक्त 'अघजन्मा' आदि का समाधान हो जाता है । अध्यात्मरामायण में भी शबरी ने स्वयमेव ''योषिन्मूढाऽप्रमेयात्मन् हीनजातिसमुद्भवा'' कहा है । वहीं भगवान् श्रीराम ने भी ''स्त्रियो वा पुरुषस्यापि'' में 'स्त्री-पुरुष' ही कहा है; शूद्रादि नहीं ।

कोई प्रमत्त कहते हैं कि कौशल्या, सीता आदि ने ऐसा क्यों नहीं कहा ? प्रमत्तो ! भक्तिप्रेम की प्रवणता में स्त्री ही नहीं; ब्राह्मणादि वर्ण के महनीय पुरुष भी ''तृणादपि सुनीचेन'' बनने में परमानन्द का अनुभव करते हैं । कौशल्या आदि भी शबरी वाली स्थिति में होतीं तो अवश्य ही ऐसा कहतीं । प्रलापी ''मैं नारि अपावन'' इस अहल्योक्ति को देखे । तैत्तिरीयसंहिता ६।५।८।२ ''तस्मात्स्त्रियो निरिन्द्रिया अदायादीरपि पापात्पुंस उपस्तितरम्'' के अनुसार ब्राह्मणीपक्ष में भी शबरी को 'अघजन्मा' कहा जा सकता है । गोविन्दराज ने ३।७४।३५वें श्लोक की व्याख्या ''स्त्रियामपि विदुरादेरिव योगाधिकारः सम्भवति तदङ्गयज्ञादिकर्मस्थाने गुरुशुश्रूषा स्वर्गश्चादौ अक्षयानित्युक्त्या पुनरावृत्तिरहितं परमपदमित्यवगम्यते'' में शबरी को शूद्रा न कहकर केवल 'स्त्री' ही कहा है ।

भगवान् श्रीराम ने ''राघवः प्राह विज्ञाने'' वा.रा. ३।७४।१९ में शबरी को 'विज्ञाना' भी कहा है, जिसका अर्थ तिलक, शिरोमणि, तीर्थ, भूषण, कतकादि टीकाकारों ने 'मैत्रेयादि के समान ब्रह्मविद्याधिकारिणी' किया है । ''तां नित्यमबहिष्कृतां भोजनादिव्यवहारात् । तद्दत्तमाहाराद्यङ्गीकृत्य'' से भी शबरी के भोजनादिव्यवहारयोग्या होने से भगवान् श्रीराम ने तत्प्रदत्त आहारादि को स्वीकार किया । इससे भी शबरी के ब्राह्मणी होने की पुष्टि होती है।

प्रकरणवशात् पुनः एक प्रश्न उठता है कि वर्णाश्रम की मर्यादा का पालन करनेवाले क्षत्रियकुलोत्पन्न ब्राह्मणभक्त भगवान् श्रीराम ने वृद्धा ब्राह्मणी शबरी से पादस्पर्श क्यों कराया ?

इसका स्पष्टीकरण है- शबरी को पूर्व में ही गुरुकृपा से श्रीराम के ब्रह्मादिवन्दितपद भगवत्स्वरूप और उनके आश्रमसमागमन का ज्ञान हो गया था । संग्रहरामायण ३।६।३७ में भी शबरी कहती है- ''मतङ्गवाक्यमुकुरे मतं रूपमिदं तव । अपरोक्षमवेक्षेऽहं परं ब्रह्म गुणार्णवम् ।।'' हे राम ! श्रीमतङ्गोपदेश के प्रभाव से मैं आपके अपरोक्षस्वरूप को देख रही हूँ । अतः शबरी ने क्षत्रिय राम नहीं; क्षत्रिय राम के रूप में अनन्तगुणगणार्णव परब्रह्मरूप भगवान् श्रीराम का अपरोक्ष दर्शन-वन्दन किया । शबरी भगवद्दर्शन के लिए ही प्राणधारण कर रखी थी । भगवान् श्रीराम ने भी शबरी के दिव्यान्तर्भाव को समझकर उसे दुर्लभ स्वर्धाम प्रदान कर दिया । भगवद्भाव में यह शङ्का इसलिए भी निर्मूल हो जाती है कि नहीं चाहते हुए भी भगवान् श्रीराम ने ब्राह्मणी अहल्या का उद्धार करने के लिए स्वयमेव अपना पादस्पर्श प्रदान किया था । सर्वत्र परममङ्गल ही हुआ ।

कुछ महाशय कुतर्क करते हैं कि यदि शबरी ब्राह्मणी थी तो उसने क्षत्रिय राम को पाद्य-अर्घ्य आदि क्यों दिया ?

समाधान- यद्यपि शबरी केवल दशरथपुत्र क्षत्रिय राम का स्वागत नहीं कर रही थी; अपितु गुरूपदेशात् भगवान् श्रीराम का सम्यक् समर्चन कर रही थी । तथापि पारस्करगृह्यसूत्रादि में छः प्रकार के सत्पात्र अर्घ्य या अर्हणीय बताये गये हैं; यथा- ''षडर्घ्या भवन्त्याचार्य ऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियः स्नातक इति'' इन छः के स्वागतार्थ विष्टर, पाद्य, अर्घ्य, आचमन और मधुपर्क प्रदान करना चाहिए । शबरी ने ऐसा ही किया । भगवान् श्रीराम राजा भी थे और शबरी के प्रिय भी । अनन्तब्रह्माण्डाधिपति भगवान् श्रीराम की पादुकाएँ ही अयोध्या के राजसिंहासन पर विराजमान थीं ।

एतादृश भ्रम उत्पन्न करनेवाले वितण्डियों से पूछा जाता है कि आज भी संसार के स्वधर्मनिष्ठ ब्राह्मण-ब्राह्मणी भगवान् श्रीसीताराम-कृष्ण का वन्दन-पूजन नहीं करते हैं क्या ? यदि करते हैं तो ये सभी पापकर्मा अपराधी हैं ? यदि करते हैं तो क्षत्रिय को करते हैं या क्षत्रियकुल में प्रकट भगवान् श्रीसीताराम-कृष्ण को ? ऐसा करना गलत है क्या ? रामायण, महाभारत, पुराणादि में ब्राह्मण-ब्राह्मणियों ने श्रीराम-कृष्ण की वन्दना नहीं की है क्या ? ब्राह्मणकुलशिरोमणि श्रीहनुमान्जी भगवान् श्रीसीताराम का पादवन्दन नहीं करते हैं क्या ? ऐसा प्रवाद फैलाने वाले महाशय 'सूकररूप' वराह भगवान् को प्रणाम नहीं करेंगे क्या ? यदि करेंगे तो सूकर को करेंगे या सूकररूप भगवान् को ? धार्मिक सत्समाज में गन्दगी फैलाते रहना जघन्य अपराध है ।

पुनः शबरी के लिए वाल्मीकिप्रोक्त ''श्रमजीविनी'' शब्द भी उसे शूद्रा सिद्ध करने में समर्थ नहीं । ''श्रमस्तपसि खेदे च'' इस कोष के प्रमाण से तथा ''श्रमु तपसि खेदे च'' इस दिवादिगणीय धातुपाठ में कहे हुए अर्थविशेष से 'श्रमजीविनी' का 'तपस्विनी' अर्थ में पर्यवसान हो जाता है । रामायण की तिलकटीका ११।१।५६ में इसी का अन्य पर्याय 'श्रमणा' भी प्रसिद्ध है- ''तपसा श्राम्यतीति श्रमणा ।'' इस प्रकार विविध आम्रेड़न से श्रीमद्वाल्मीकिरामायण के अनुसार 'शबरी' उस श्रमणी का नाम और 'ब्राह्मणी' उसकी जाति सिद्ध हुई । शबरीविषयक इतिहासों को प्रामाणिक रामायणों के अनुकूल ही प्रकट करना उत्तम है । विभिन्न रामायणों में मतान्तर दृष्ट होने पर वाल्मीकिरामायण की ही प्रधानता होती है । वाल्मीकिरामायण ''कोऽन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके'' में वर्तमान कल्प की सीतारामकथा का प्रतिपादन है । आनन्दरामायण ७।३।४४ में भी ''न सा दासी (शूद्रा) तु शबरी मुनिसेवनतत्परा'' जिसे तुम दासी कहते हो, वह दासी नहीं; अपितु मुनियों की सेवा में तत्पर शबरी थी । रघुवंश १६।५७ की टीकाओं में ''किरातीम्'' का अर्थ ''चामरवाहिनीं दासीम्'' ही लिखा है ।

विनयपत्रिका १८३ ''भीलनी के फल खाए'' पर शीघ्रता नहीं करनी चाहिए । विक्रमसंवत् १,६६६ में लिखी 'विनयावली' की प्रामाणिक प्रति में १७६ पद ही मिलते हैं और वर्तमान की उपलब्ध कई प्रतियों में उक्त पद १८३वाँ है; कैसे ? किसी प्रति में २७९ और किसी में २८० तक पद हैं । ये १०३ या १०४ अधिक पद कहाँ से कैसे आये ? भीलनी वाला १८३वाँ पद १७६ के अन्तर्गत है या पृथक् वाले १०३-४ में ? विचारणीय है । अन्यान्य समालोचकों ने अन्यान्य बातें भी लिखी हैं । पहले इस साहित्य का नाम 'विनयावली' एवं 'रामगीतावली' था; बाद के सम्पादकों ने 'विनयपत्रिका' के नाम से इसका प्रसारण किया । सम्प्रति विनयपत्रिका का विश्लेषण मेरा इष्ट नहीं; केवल प्रबुद्ध पाठकों के लिए संकेत मात्र कर दिया है । कवितावली में मात्र ''सराहे फल सबरी के'' लिखा है । विनयपत्रिका के ''भीलनी के फल खाए'' अथवा ''सबरी के फल खाए'' का चातुर्य भी विचिन्तनीय है ।

अस्तु; यदि विनयपत्रिका की उक्त पंक्ति श्रीगोस्वामीजी की सिद्ध होती है तो कल्पान्तरीय कथानक के रूप में इसकी प्रामाणिकता स्वीकार करनी चाहिए । कवितावली (विशेषतः उत्तरकाण्ड) में भी गोस्वामीजी की फुटकर रचना के नाम से उनके साकेतगमन के बाद बहुत सारे पद प्रकाशित किये गये हैं; तथापि ७।१८ ''सुनारी भोंड़े भील की'' सङ्गति भी उपर्युक्त प्रकार से लगानी चाहिए । गोस्वामीजी ने विभिन्नकल्पीय श्रीरामकथा का प्रकाश किया है- ''रामजनम के हेतु अनेका'', ''जनम एक दुइ कहउँ बखानी'', कलपभेद हरिचरित सुहाए'' आदि विवेच्य हैं । कतिपय कथानकों में महर्षि वाल्मीकि और गोस्वामी तुलसीदासजी का पार्थक्य स्पष्ट है; यथा- श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में श्रीसीतारामविवाह के बाद श्रीपरशुरामजी का आगमन होता है और श्रीरामचरितमानस में विवाह से पहले । परन्तु कोई भी प्रबुद्ध विचारक गोस्वामीजी को अपना शस्त्र बनाकर वाल्मीकिजी का खण्डन नहीं करते; अपितु कल्पभेद से ही दोनों का प्रामाण्य स्वीकार करते हैं । पुराणों में श्रीहनुमान्जी की विभिन्न जन्मतिथियाँ कल्पभेद से ही मान्य हो सकती हैं ।

एक कवि ने श्रीरामचन्द्राष्टकम् की रचना में ''पदं प्राप्ता यस्याधमकुलभवा चापि शबरी'' लिख दिया है; अन्यों की तरह यह लेखक की मान्यता है ।

श्रीवाल्मीकिरामायण के अनुसार ''कोऽन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके'' वाल्मीकिजी ने 'साम्प्रतम्' यानी वर्तमान कल्प के श्रीराम की कथा कही है । एतत्कल्पीय श्रीरामकथा के लिए अन्यान्य कथानकों में अतिशय श्रद्धा रखते हुए श्रीवाल्मीकिरामायण की प्राथमिकता स्वीकार करनी चाहिए । प्रवादी सावधान हो जाय; मैंने किराती या भिल्लीवेशधरा शबरी नामवाली कई देवियों का परिचय स्पष्ट कर दिया है । अपराजितास्तोत्र में भगवती अपराजिता को भी ''शबरी किराती'' कहा गया है । महामायातन्त्रम् में त्रिनेत्रा देवी को ''बुधाभिषेका शबरी'' कहा है । यद्यपि करपात्रप्रोक्त महर्षि वाल्मीकि की एतत्कल्पीया शबरी पर प्रकाश डालना ही मेरा उद्देश्य था परन्तु प्रलापियों के असत्प्रपञ्च से भगवती शबरी के लिए ''नगरी नगरी द्वारे द्वारे'' भटकना पड़ा; अच्छा ही हुआ ।

स्वामी श्रीमदखण्डानन्द सरस्वतीजी द्वारा लेखन या प्रवचन में शबरी को शबरजातीया कहना उनका मत है । जैसे अन्यों का कल्पान्तरीय ग्रहण अपेक्षित है; वैसे स्वामीजी का विचार भी सम्मान्य है । स्वामीजी देशकालपरिस्थितिज्ञ थे । आवश्यकतानुसार श्रीमद्रामानुजादि महाभाग ही नहीं; स्वपरम्परा के प्रधानाचार्य श्रीशङ्करभगवत्पाद के विचारों को भी बारीकी से बदल देते थे । जिज्ञासुजन गीतारसरत्नाकर में ''स्त्रियः शूद्रास्तथा वैश्याः'' का स्वामीजी द्वारा किया विवेचन एवं शाङ्करभाष्यादि विविध व्याख्यानों को देखें । वीडियो सुनाने वाला सद्भेदक यह क्यों नहीं कहता कि स्वामीजी ने सभी पूर्वाचार्यो को मूर्ख बना दिया । यद्यपि स्वामीजी ब्राह्मणेतर के संन्यासग्रहण के पूर्ण पक्षधर नही थे और धर्मशास्त्र का सिद्धान्त भी यही है; तथापि देशकालपरिस्थितिवशात् उन्होंने ब्राह्मणेतर को संन्यास की दीक्षा दी थी । वैराग्योदय हो जाने पर ब्राह्मणेतर भी संन्यासवेश धारण किये बिना भगवत्प्राप्त्यर्थ संन्यासजीवन व्यतीत करे तो श्रेयस्कर ही है ।

पुनः समकाल में ही विभिन्न मनीषियों के विचारवैविध्य भी तो ग्रहण नहीं कर सकते । सभी पूज्यों का यथोचित समर्चन करते हुए जिस पक्ष को हृदय स्वीकार कर ले; वही ग्राह्य होता है । कोई कलुषितचित्त स्वामीजी को क्या जाने ? वर्षो से उनके साहित्यसिन्धु में निमज्जन कर रहा हूँ । स्वामीजी ने श्रीकरपात्रीजी और श्रीनिश्चलानन्दजी की कितनी प्रशंसा की है; ये स्वार्थी कुत्सित जीव उसे नहीं सुन-सह सकते । स्वामीजी सभी सत्पात्रों के प्रणम्य थे, सभी सम्प्रदायाचार्यो के जन्मोत्सव-पुण्योत्सव मनाते थे और श्रद्धा से सबकी सुनकर सबका यथोचित सम्मान करते थे ।

करपात्रविनिन्दक स्वयम्मानी जीव अपनी कुटिलशब्दयोजना से शान्त समाज में केवल आग लगाने की कुचेष्टा करता रहता है । वह अव्यवस्थितचित्त श्रीवाल्मीकिरामायण के ''दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च'' और श्रीमद्भागवत के ''त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम्'' में बार बार ११-१३ का भेद और कल्पभेद समझा रहा है परन्तु समन्वय का अल्पप्रयास भी नहीं कर सकता । प्रलाप की अपेक्षा सर्वसुलभ 'भागवतगूढार्थदीपिनी' टीका को देखने की चेष्टा कर लेता तो विरोध करने-कराने में चतुर प्राणी रामायण और भागवत में भी विरोध उत्पन्न नहीं करा देता- ''त्रयोदशेति पृथक् पदं सम्बोधनम् । तथाहि त्रयेण प्रभावोत्साहमन्त्ररूपेण शक्तित्रयेण उदश्नाति राज्यं भुङ्क्ते इति त्रयोदशो नृपः तत्सम्बुद्धौ हे त्रयोदश राजन् ! अब्दसहस्रमग्निहोत्रमजुहोत् ब्रह्मचर्यं धारयन्नित्यन्वयः । अतो यथोक्तरामायणसंख्ययाऽपि न काऽप्यनुपपत्तिरिति'' जो राजा प्रभाव, उत्साह और मन्त्र रूप तीन शक्तियों से राज्य का भोग करे उसे त्रयोदश कहा जाता है । परन्तु ''वादी भद्रं न पश्यति''

ज्ञातव्य- भक्तिमार्ग के कई साहित्यों में द्विजेतर लेखकों एवं कतिपय द्विजों ने भी द्विजेतरों में भक्तिभाव प्रसारित करने अथवा द्विजों को अपकृष्ट सिद्ध करने के उद्देश्य से प्रामाणिक ग्रन्थों के विरुद्ध कई प्राचीन भक्तों को चाण्डाल, अन्त्यज आदि कह डाला है । श्रीमद्भागवतादि के विरुद्ध 'ब्राह्मण अजामिल' को भी अन्त्यज लिख दिया है । मन्वादि धर्मशास्त्रप्रोक्त वर्णाश्रम का तिरस्कार कर भक्ति के अर्थवादस्वरूप भगवद्भक्त अन्त्यजों का उच्छिष्ट द्विजों को भी खिलाया गया है । अतः ऐतिहासिक तथ्यों के प्रकटीकरण में उन ग्रन्थों का अव्याहत प्रामाण्य स्वीकार्य नहीं है । वहाँ शबरी को भीलनी या शूद्रा बताना श्रीमद्वाल्मीकिरामायण के विरुद्ध है । भुशुण्डिरामायण, भावार्थरामायण, सूरसागर, विविधभक्तमाल, दिव्यरामायण, चम्पूरामायणटीका, राधेश्यामरामायण, बलरामरामायण, जगमोहनरामायण, तत्त्वार्थरामायण, कबीरवाणी आदि के रोचक कथानकों को भक्तिप्रेमस्तुत्यर्थ ग्रहण करना श्रेयस्कर है ।

किसी भी पंक्ति को प्रमाणरूप में प्रकाशित करने से पहले पंक्तिकार के देश, काल, परिस्थिति, प्रकृति, प्रवृत्ति, परिवेश, उद्देश्य आदि का बाह्याभ्यन्तर निरीक्षण-परीक्षण करके ही उसे ग्रहण करना चाहिए । करपात्रद्रोही ने जिन-जिन महानुभावों को धर्मशास्त्रशिरोमणि घोषित कर श्रीकरपात्रीजी आदि धर्मप्राण महामनीषियों का अपमान किया है; वे उनमें से किन्हीं एक का नाम बता दे; जिन्होंने वेदों के किसी मन्त्रभाग या ब्राह्मणभाग का भाष्य, श्रौतसूत्रभाष्य, गृह्यसूत्रभाष्य, मनु-याज्ञवल्क्यादि स्मृतियों के भाष्य अथवा कृत्यसार या धर्मसिन्धु आदि की तरह कोई धर्मशास्त्रीय प्रबन्ध निबन्धग्रन्थ लिखे हों ? शबरी के शूद्रा होने और श्रीराम के शूद्रोच्छिष्टभक्षण पर बहुत प्रपञ्च चल रहा है । प्रलापी आग में घी डालते रहने का दुरुपक्रम बन्द करे ।

भुशुण्डिरामायण को सश्रम प्रकाश में लाने वाले प्रमुख शोधकर्ता श्रीभगवतीप्रसाद सिंह ने प्रथमखण्ड की भूमिका के ६०वें पृष्ठ में स्पष्ट लिखा है- ''भुशुण्डिरामायण आगमिक धारा की उपासना का एकान्त समर्थक ग्रन्थ था । जिसमें माधुर्यभाव की प्रधानता थी, आराध्य को छोड़कर अन्य देवी-देवताओं का तिरस्कार था, वर्णाश्रम धर्म की उपेक्षा थी, आचार-सम्बन्धी नियमों में शिथिलता स्वीकार्य थी, युगलकिशोर की अष्टयामलीला का चिन्तन अथवा मानसी पूजा ध्येय थी । भुशुण्डिरामायण व्यष्टिसाधनापरक ऐकान्तिकी भक्ति का प्रतिपादक था । इसके फलस्वरूप भुशुण्डिरामायण रसिकसम्प्रदाय के कवियों का प्रमुख उपजीव्य बन गया ।'' प्रेमभक्ति की प्रधानता प्रकट करते हुए भी ऐसे वर्णाश्रमविरुद्ध विचार उन्होंने अथवा अन्य किन्हीं सदन्वेषकों ने श्रीवाल्मीकिरामायण या श्रीरामचरितमानस के लिए कहीं नहीं लिखे हैं ।

'हिन्दीसाहित्य का इतिहास' में आचार्य श्रीरामचन्द्र शुक्ल ने और स्पष्ट लिखा है- ''रामचरणदासजी ने अपने मत की पुष्टि के लिए अनेक नवीन कल्पित ग्रन्थ प्राचीन बताकर अपनी शाखा में फैलाये; जैसे- लोमशसंहिता, हनुमत्संहिता, अमररामायण, भुशुण्डीरामायण, महारामायण, कोशलखण्ड, रामनवरत्न, महारासोत्सव सटीक आदि ।'' कुछ निर्ग्रन्थी लोग कहते हैं कि अमुक ने हिन्दी के लेखकों को भी प्रमाणित मान लिया ! सावधान- पहले के हिन्दीसाहित्यकार काव्यालङ्कारविहीन 'चौबटिया के बाट' वाले नहीं होते थे; मौलिक साहित्यों का अध्ययन-सुमनन करके ही याथार्थ्य प्रयोग में सक्षम होते थे । कुछ विषयों में उनकी विचारधाराएँ भिन्न हो सकती हैं; परन्तु सर्वत्र सर्वथा हेय नहीं ।

यद्यपि श्रीवाल्मीकिरामायण एवं ब्रह्मयामलतन्त्रादि में वनवास के समय श्रीराम-लक्ष्मण के मांस-मैरेयाशन की चर्चा है (कुछ विद्वानों ने अर्थान्तर का प्रयास किया है); तो आगमीय परम्परोक्त भुशुण्डिरामायण में ऐसी चर्चा का होना आश्चर्य नहीं । वैष्णवसम्प्रदाय या विशेषतः उत्तर की वैष्णवपरम्परा में श्रीराम-लक्ष्मण एवं स्वयं का मांस-मैरेयाशन स्वीकार्य नहीं । तथापि प्रेमभक्तिस्तुत्यर्थक इन महनीय ग्रन्थों को अप्रामाणिक ही कह देना उचित नहीं; परन्तु ''कल्पभेदेन भाववैशिष्ट्येन वा'' इनका भी ग्रहण करना चाहिए । कालिकापुराण के ''प्रतिकल्पं भवेद्रामः'' एवं ''कलपभेद हरिचरित सुहाए'' के अनुसार प्रसङ्गवैविध्य का समन्वय करना चाहिए । कुब्जिकातन्त्र में ''योगे तु शबरी प्रोक्ता'', महाभारत में ''नारी किराती शबरी नर्तकी'', एक स्वामिशिष्य ने अप्पय्यगीता में ''शबरस्य गृहे जाता शबरी'' लिख दिया है । कोशों में 'किरात' का अर्थ 'व्याध' भी लिखा है । इसीलिए गोस्वामीजी ने ''गनिका अजामिल व्याध'' के 'व्याधकर्मा' ब्राह्मण वाल्मीकि को भी ''मुनि भयो किरातो'' (विनयपत्रिका १५१) 'किरात' कह डाला है । प्रापञ्चिक शब्दों से स्मार्त्त-वैष्णवों के सौहार्द में आग लगाने वाले कुटिल जन थोड़ा पढ़े-लिखे भी .....

आश्चर्य तो तब बढ़ जाता है जब भुशुण्डिरामायण के कुछ श्लोकों से भगवती शबरी को भिल्लजा सिद्ध करनेवाले करपात्रविरोधी विकृतमति ने स्वयं लिखा भी है कि करपात्रीजी ने भुशुण्डिरामायण को देखा था । तथापि करपात्रखण्डक की बुद्धि में करपात्रीजी का अन्वेषण प्रामाणिक नहीं लगता । मैंने स्वयमपि आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व २,००९ में ही भुशुण्डिरामायण का कई बार अक्षरशः अवलोकन कर अपने विस्तृत प्रबन्ध ''गोवंशमहिमामृतम्'' में भुशुण्डिरामायण में उपलब्ध गोपरक सैकड़ों श्लोकों को समाहित किया है । गाँधीधाम गुजरात में सम्पन्न २,०२२ के गोनवरात्र महामहोत्सव में महात्ममणि श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज ने ''गोवंशमहिमामृतम्'' की पावन कथा भी कही है । पुनः शोचनीय- जिसने दो महीने पूर्व मुझसे ही भुशुण्डिरामायण के अस्तित्व के बारे में पूछा, वह मुझे ही नहीं; करपात्रीजी को भी भुशुण्डिरामायण का पाठ पढ़ा रहा है । सच ही कहा है- ''गण्डूषजलमात्रेण शफरी फर्फरायते ।'' हे राम ! मर्यादा की रक्षा करो ।

सर्वतोभावेन हेय कुटिलप्रलापी ने अपने शब्दकौटिल्य से शबरी के ब्राह्मणीपक्ष वाले धर्मप्राण स्वामी श्रीकरपात्रीजी, स्वामी श्रीनिरञ्जनदेव तीर्थजी, स्वामी श्रीनिश्चलानन्दजी, सनातनशास्त्रों के महान् समुद्धारक महाविद्वान् श्रीदीनानाथ सारस्वतजी आदि महापुरुषों को अज्ञानी कहकर अपमानित करते हुए इन्हें भुशुण्डिरामायण ही नहीं; भक्तमाल और सूरसाहित्य का ककहरा पढ़ाने का कुप्रयास किया है । मैं तो अल्पज्ञ हूँ ही; मेरी क्या बात ! मैंने पहले भी दूकानदारी फैलाने का प्रपञ्च नहीं किया; अब तो जो फैल चुकी थी उसे भी समेटने में लगा हूँ । मुझे मेरे मानापमान की विशेष व्यथा नहीं; परन्तु धर्मविग्रहों का अपमान सहन कर एकदम चुप रह जाना अपराध होगा ।

सावधान- वर्तमान में भक्तमाल और सूरसाहित्य के सबसे बड़े अनुरागी श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज ने भी स्पष्ट कहा है कि श्रीभक्तमाल प्रमाणकोटि का ग्रन्थ नहीं है; परन्तु आस्तिक ही नहीं, नास्तिकों में भी भगवत्प्रेम प्रकट कर देने में इनकी अद्भुत उपयोगिता है । इसलिए कुटिलतम कुशब्दयोजना से सत्समाज में पारस्परिक भेद उत्पन्न करते रहना भयङ्कर अपराध है । ऐसे मिथ्याभिमानी को प्रौढ़गुरुपरम्परया न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, सांख्य, योग, वेदान्त, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, अनन्तशाखीय चतुर्वेद, पदपाठ, क्रमपाठ, जटापाठ, मालापाठ, शिखापाठ, रेखापाठ, ध्वजपाठ, दण्डपाठ, रथपाठ, घनपाठ, उपलब्ध शाखाओं के ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, इनके प्रामाणिक विविध भाष्य, इनके गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र, शुल्बसूत्र, प्रातिशाख्य, धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारत, पुराण, काव्य, महाकाव्य, लक्षणग्रन्थ, परिष्कारप्रकार, मण्डप-कुण्डविधान, श्रौत-स्मार्त्तयज्ञविधान, तन्त्रागमरहस्य, सप्रयोग विविधशाखीय देवर्षिपितृकर्म आदि में से किसी एक की भी प्राथमिक पोथी का अध्ययन कर लेना चाहिए । परन्तु भयानक आश्चर्य होता है- जिसे ज्ञान, अज्ञान, प्रमाण, वेद, शास्त्र आदि की तर्कसंग्रहीय परिभाषा का भी अल्पज्ञान नहीं; वह प्रमत्तप्राणी सनातनधर्मोद्धारक महादार्शनिक सकल अदुष्टपूज्य धर्म्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रिमहाभाग सदृश महापुरुषों को ही नहीं; महामीमांसक श्रीकुमारिलभट्ट को भी अज्ञानी और मूर्ख बता रहा है । प्रलापी स्वयं बताता भी है कि करपात्रीजी ने भुशुण्डिरामायण का अध्ययन किया था; तथापि वह करपात्रद्रोही बार बार प्रलापते हुए स्वयं को सर्वज्ञ सिद्ध कर रहा है कि करपात्रीजी जीवित होते तो मेरे प्रमाण को पढ़कर पराजय स्वीकार करते ! कितनी विडम्बना है !

अस्तु; भुशुण्डिरामायण, भक्तमाल, सूर-कबीरसाहित्य आदि से मेरा भी सम्बन्ध है परन्तु प्रकृत प्रकरण में भुशुण्डिरामायणादि का बाह्याभ्यन्तर स्वरूपविवेचन मेरा इष्ट नहीं । दुष्टजन चाहता है कि मैं अमुकामुक साहित्य एवं सम्मान्य साहित्यकारों के नाम लेकर उनकी निन्दा करूँ और तत्तत् सत्समाज का कोपभाजन बन जाऊँ ! भक्तमाल आदि को निमित्त बनाकर अपने शब्दकौटिल्य से करपात्रीजी को अपमानित करनेवाला जान ले कि भक्तमाल एवं सूरपदावली का श्रवण करते समय स्वामीजी के नेत्रों से भक्तिप्रेमाश्रु प्रवाहित होते रहते थे । वे श्रीकृष्ण की बाल-विरहलीलादि में सूर ही नहीं; रसखान की पंक्तियों को बोलने में भी आह्लादित होते थे । भगवद्भक्तशिरोमणि शुकरूप श्रीकरपात्रमहाभाग को कुछ जाने-समझे बिना उनकी विगर्हणा करना कथमपि सही नहीं ।

सर्वभूतहृदय धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी ने अपने प्रसिद्ध प्रौढ़ ग्रन्थ 'रामायणमीमांसा' में स्पष्ट लिखा है- ''वाल्मीकिरामायण के अनुसार शबरी एक धर्मचारिणी ब्राह्मणी श्रमणी थी । उसका शबरी केवल नाम ही था । वह शबरजाति की भीलनी आदि नहीं थी और श्रमणी अर्थात् सिद्धा सिद्धसम्मता तापसी थी । यत्र-तत्र शबरी को शबरजाति का बताना और उसके द्वारा श्रीराम को जूठे फल देना आदि प्रामाणिक न होकर प्रेमस्तुत्यर्थ ही है ।'' वितण्डियों को निर्दुष्टभाव से विचारना चाहिए कि स्वामी करपात्रीजी ने श्रीवाल्मीकिरामायण, अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण, भुशुण्डिरामायण आदि का बाह्याभ्यन्तर निरीक्षण-परीक्षण करके ही महत्तम साहित्यशिरोमणि 'रामायणमीमांसा' को प्रकट किया था । शब्दकौटिल्य से पारस्परिक भेद उत्पन्न करना सही नहीं ।

स्वामी श्रीकरपात्रीजी का सम्मान करते हुए काञ्चीपीठ के परमाचार्य स्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती महाभाग ने घोषणा की थी- ''धर्म्मप्राण सज्जनो ! अद्यावधि आपने वेद सुना है, पढ़ा है; परन्तु महत्सौभाग्येन आज करपात्रमहाभाग के रूप में वेदविग्रह का साक्षात् दर्शन कर लो ।''

परन्तु जो उन्मादी किसी वेदशाखा के एक मन्त्र या ब्राह्मणभाग का कण्ठस्वर एवं हस्तस्वरसहित पद-क्रम-जटादि विकृतिपाठ तो दूर; संहितापाठ भी नहीं कर सकता, वह भी सनातनशास्त्रों के महाप्राण निश्छलहृदय वेदभाष्यकार प्रमाणपुरुष धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी को अज्ञ, अज्ञानी, अधीर, प्रमादी, थेथर आदि घोषित करने में लजाता नहीं । वह उन्हें शम्बूकवध का रहस्य समझाता है ! राम ! राम ! ब्रह्माण्डगुरु बनने के लिए यह कुत्सित प्रक्रिया सही नहीं ।

मीमांसा को वाक्यशास्त्र कहा जाता है । पूर्वोत्तरमीमांसामनन के बिना शास्त्रों के एक वाक्य का भी तात्पर्य समझना कठिन ही नहीं; असम्भव है । परन्तु जो उन्मत्तप्रलापी महामीमांसक वेदोद्धारक श्रीकुमारिल भट्टपाद को ही अज्ञानी कह रहा है; उसे जीवनभर के लिए शास्त्र शब्द बोलना भी छोड़ देना चाहिए । जिस स्वयम्मन्य को मीमांसा की बालपोथी का भी अल्पबोध नहीं; वह वेदविग्रह महामनीषी को कल्पभेद समझने का ढङ्ग बताता है । शोचनीय- ऐसे लोग संसार को क्या बताना चाहते हैं कि सहस्राब्दियों में सनातनशास्त्रों को समझने वाला कोई हुआ ही नहीं ? करपात्रिसदृश महामानव मूर्ख थे ? सकलशास्त्रविग्रह के रूप में केवल मैं ही प्रकट हुआ हूँ !?

सज्जनो ! धर्मरक्षार्थ ऐसे कुपात्र के कुटिल प्रेरक से भी सावधान रहना चाहिए । आज अपनी बुद्धि के अनुसार सबको अपनी बात प्रसारित करने की छूट है; परन्तु वृद्धप्रपितामह के भी पूज्यातिपूज्य महापुरुषों को ''त्वङ्कारेण गरीयसाम्'' तुम, अज्ञ, अज्ञानी, मूर्ख, मूरख, प्रमादी, धूर्त, थेथर आदि अपशब्दों से अपमानित करना सज्जनों के सहन योग्य नहीं हो सकता । अमुकामुक दर्शन, सम्प्रदाय एवं शास्त्रसाधनादि के भेद से भी तात्पर्यग्रहण में भेद होता है; परन्तु पूजा के योग्य महानुभावों को अपमानित करते रहना भयङ्कर अपराध है । पुनः ऐसे व्यक्ति के द्वारा- जिसे कॉपी-पेस्ट से अतिरिक्त शास्त्र की परिभाषा का भी अल्पबोध न हो ! खूब खण्डन करो । परन्तु अपनी सामर्थ्यसीमा का अतिक्रमण मत करते रहो । खण्डन-मण्डन शास्त्रों के शृङ्गार हैं । खण्डन-मण्डन से जिज्ञासुओं में शास्त्रान्वेषण की प्रवृत्ति बढ़ती है । विभिन्न स्थानों में बिखरी सामग्रियों का एकत्रीकरण हो जाता है । वस्तुतत्त्व साक्षात्कार की ओर अग्रसर होता है । परन्तु सर्वज्ञमानी लोग ऐसे कुत्सित शब्दों का प्रसारण करता रहता है कि कोई सज्जन उससे मुँह ही न लगाए । वह सर्वासूयक जीव जब शास्त्र शास्त्र की रट लगाकर थक जाता है तब अपने प्रतिकूल विद्वानों के वैयक्तिक दोषान्वेषण का दुष्प्रचार करता रहता है कि वे अन्धे हैं, काने हैं, वे उनके कान फूँकते हैं, वे उनसे बात करते हैं, उन्होंने यह क्यों नहीं कहा आदि ।

और उसे जब अपना उल्लू सीधा करना होता है तो जिस किसी की भी पूँछ पकड़ कर वैतरणी पार होने की इच्छा से डिगता नहीं; सच है ''मरता क्या नहीं करता'' । जो नहीं पूछे जाने पर स्वामिनारायणादि की सदैव निन्दा करता रहता है वह प्रयोजनवादी स्वार्थसिद्धि के लिए उसी परम्परा के द्वारा ५०-६० वर्ष पूर्व विरचित श्रीलक्ष्मीनारायणसंहिता के ''शूद्रधर्म पुरस्कृत्य'' से शबरी को भीलनी सिद्ध करते हुए अपनी पीठ थपथपाने में लजाता नहीं । वह इतना भी विचार नहीं कर सकता कि जब शबरी शूद्रा थी ही तो ''शूद्रधर्म पुरस्कृत्य'' का क्या प्रयोजन ? वादी ने यह भी देखना उचित नहीं समझा कि उक्त संहिता के ''कृतयुगसन्तानः'' प्रकरण में श्रीकृष्णपत्नी ब्रह्मप्रिया के किसी कल्प में शबरी होने की चर्चा है; क्योंकि इस कल्प में तो कृष्णावतार के बाद किसी रामावतार की चर्चा मिलती नहीं । विशेष जिज्ञासु सज्जन इस प्रकरण को उक्त संहिता के मूल में देखें । मेरा प्रयोजन केवल श्रीवाल्मीकिरामायण की शबरी का वर्णनिर्णय करना है; अन्यत्र की भी सभी शबरियों को पुनः पुनः प्रणाम । जिज्ञासु पाठक रामायणमञ्जरी आदि भी देखें ।

पुन: सावधान- ऐसे सर्वज्ञमन्य कुटिल लोग जानबूझकर उच्चकोटि के महामनीषियों को अपना शिकार बनाते हैं और उनके अपमान के माध्यम से अपनी दूकानदारी फैलाने की कुचेष्टा करते हैं । एतादृश प्राणी का एकमात्र यही उद्देश्य होता है कि अमुकामुक महापुरुष निन्दा या प्रशंसा के रूप में मेरे नाम का सार्वजनिक स्मरण करे । ये कपटी और अपस्वार्थी जीव जानते हैं कि उच्चतम महापुरुषों के लिए ऐसे गर्हित से गर्हिततम अशिष्ट शब्दों का प्रयोग करते रहने से मर्यादित महानुभाव स्वयमेव अपनी मर्यादा बचाने के लिए मौन-गौण बने रहेंगे और उनकी निरुत्तरता से मेरी कोरी सर्वज्ञता सिद्ध होती रहेगी, मैं प्रसारित करता रहूँगा कि मेरे अहङ्कार का सामना करनेवाला संसार में कोई नहीं मिला !

विचारणीय है कि कोई लेखक विषयाधिकृत विद्वानों के निरीक्षण-परीक्षण के लिए ही शास्त्रश्रम करता है; केवल कोरे कमेण्टबाजों के लिए नहीं । जब ऐसे कुत्सित लेखक सच्छास्त्रप्रेमी सज्जनों को भी तिरस्कृत करते रहेंगे तो उनके साहित्यसाधना का समालोचक कौन होगा ? निश्चय ही जब इतिहास में विविधता है जो उनके मानने वाले भी विविध मति के होंगे ही । ऐसी स्थिति में संसार को मूर्ख नहीं समझते हुए अपनी समझ प्रकाशित करते रहनी चाहिए; जिसे जो रुचेगा, ग्रहण करेगा । तथापि ''मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी'' तुम्हारा मुख, तुम्हारी वाणी और तुम्हारे लिए ही समर्पित फेसबुक; जैसा चाहो, वैसा करो । न तो करपात्रीजी डण्डे लेकर आएँगे और न ही वर्तमान के मनीषिगण ही तोप से मच्छर मारने दौड़ेंगे ।

हाँ; कभी यह भी सम्भव हो सकता है कि अनन्त शब्दराशियों में अमुकामुक वचनों पर किन्हीं विज्ञ महानुभाव की भी दृष्टि न जा सकी हो । पहले आज की तरह एक क्लिक करने से रामायण-महाभारतादि की सारी तपस्विनियाँ शीघ्र ही सामने प्रकट नहीं हो जाती थीं । परन्तु यहाँ ऐसा नहीं है; करपात्रनिन्दक के अनुसार भी स्वामी करपात्रीजी ने भुशुण्डिरामायणादि का निरीक्षण किया था । अत: सर्वमन्थन के बाद ही स्वामीजी ने ब्राह्मणी शबरी का प्रामाणिक वर्णनिर्णय प्रस्तुत किया था; प्रमाद में नहीं । इतने के बाद भी परिणाम से अनभिज्ञ करपात्रद्रोही प्रमादी अपना प्रमाद स्वीकार नहीं करता; उल्टे करपात्रीजी आदि को ही प्रमादी होने का सर्टिफिकेट दे देता है ।

पुन: कुछ अप्रामाणिक लोग चिल्लाते रहते हैं कि हम व्यक्ति नहीं; शास्त्र को मानते हैं । अरे पामरो ! तुमने तो अभी शास्त्र को देखा भी नहीं है; मानोगे क्या ? प्रत्येक प्रबुद्ध किसी न किसी शास्त्रनिष्ठ व्यक्ति के प्रति ही समर्पित होता है । अमुकामुक सम्प्रदायाचार्यों ने भी शास्त्र की ही बातें कही हैं । सबके यहाँ एक ही वेदशास्त्र हैं । तथापि स्वगृहीत परम्परा के सम्मान्य व्यक्तिविशेष महापुरुष ही तत्तन्महानुभावों के प्रमाणपुरुष होते हैं; अन्यान्य परम्पराओं के गम्भीर से गम्भीरतम शास्त्रतात्पर्य नहीं ।

स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज ''अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा'' के महान् अनुयायी थे । उनका किसी से विरोध नहीं था । उन्होंने सिद्धान्तविरोधियों का भी कभी अनिष्टचिन्तन नहीं किया और सम्प्रदायसिद्धान्तविरोधियों ने भी सैद्धान्तिक विरोध करते हुए जिन महात्मा के दिव्यतेज की सदैव प्रशंसा की; तुम किस हाथ-मुख से उन धर्मविग्रह महामानव को अज्ञ, अधीर, प्रमादी, थेथरई करनेवाले लिखते-बोलते हो ?! आज से मात्र कुछ सौ वर्ष पहले हुए गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी के जन्मस्थान और दूबे-शुक्ल का ऐकमत्य नहीं हो पाया है; तुम करोड़ों वर्ष पूर्व की शबरी के विवादित वर्णनिर्णय में श्रीकरपात्रीजी जैसे महापुरुष को अज्ञ, हठी और थेथर होने का प्रमाणपत्र देते हो ?! उन्होंने तुम्हारी तरह झटिति भुशुण्डिरामायण वाली अविवेकपूर्ण लेखनी नहीं चलायी तो तुम उन्हें अज्ञ-थेथर-प्रमादी कह दोगे ? राम राम !!!!!!!!.........

सावधान- तुम्हें जो लिखना है लिखते रहो; प्रणम्यों को कथमपि अपमानित नहीं करो। करपात्री बनने से पहले करपात्री पर अंगुली मत उठाओ। इस कुरीति से न तुम्हें लाभ होगा और न साहित्य ही सम्मानित हो सकेगा। नास्तिक-विधर्मी सनातनपरम्परा पर अंगुली उठाएँगे। अर्वाचीन भुशुण्डिरामायण में भी लेखक का नाम नहीं है; उसे भी देखने-समझने का प्रयास करो।

वास्तविकता अथवा अपने छद्मविचारों की स्थापना के लिए आज भी कोई रामायण की रचना करेगा तो ब्रह्म, रुद्र, अगस्त्यादि को ही पात्र बनाएगा; तुम जैसे सर्वनिन्दक को नहीं। अभी तुम्हें लम्बी यात्रा करनी है, सँभल जाओ, धृष्टता बन्द करो, मनुष्य बनो, शिष्टता से अपनी बात कहते रहो, जीवन मधुमय होगा। धर्मदेश भारत की विद्वत्प्रसूता धरती बाँझ नहीं हो गयी है; यह रत्नगर्भा वसुन्धरा एक से एक श्रेष्ठतम सारस्वत सन्तानों को प्रकट करती रहती है। हम तुम्हारी मङ्गलकामना करते हैं। पुनरपि कोई नवीन प्रलाप प्रकट करोगे तो सम्मान्यों के सम्मानार्थ यथासमय यथासाध्य सेवा अवश्य कर दूँगा। तुम्हें जो मानना है, मानते रहो; दुनियाँ को मूर्ख मत समझो। ''हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता॥'' अनन्त शास्त्रों की कथाएँ भी अनन्त हैं। तुम्हें जो रुचे-पचे, गा-खा लो; दुनियाँ अपना गीत गाएगी।

हा प्रभो ! इस नीचमति ने किसी को नहीं छोड़ा। इसने भगवान् श्रीराम की भी विगर्हणा की है कि उन्होंने अविवाहिता शबरी की शादी क्यों नहीं करा दी ! इसके अन्तःकरण में इतना प्रदूषण है कि ''पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्'' प्रमाण लिखकर भगवती शबरी के गुरु महर्षि मतङ्ग को भी एक स्वधर्मचारिणी श्रमणी शिष्या का पति बना देने की दुष्कल्पना कर लेता है। इसके कल्पनानुसार संन्यासी-संन्यासिनी गुरु-शिष्या को पति-पत्नी की तरह रहना चाहिए। इस प्रकार का कलुषितचित्त व्यक्ति सनातनसंस्कृति के लिए काला धब्बा नहीं; काला ही काला है। हे राम !

''भीलनी के फल खाए'' (विनयपत्रिका) एवं ''सुनारी भोंड़ें भील की'' (कवितावली) आदि के माध्यम से शबरी को किरातिनी सिद्ध करनेवाले मर्मज्ञों से समुचित उत्तर की अपेक्षा में एक जिज्ञासा- गोस्वामीजी ने विनयपत्रिका १५१।७ में ब्राह्मणकुलोत्पन्न महर्षि वाल्मीकि को भी किरात कहा है- ''महिमा उलटे नाम की मुनि कियो किरातो'' श्रीरामनाम के उलटे जप की महिमा ने भी किरात वाल्मीकि को मुनि बना दिया। जबकि अध्यात्मरामायणादि में वाल्मीकिजी ने स्वयमेव कहा है कि ''जन्ममात्रं द्विजत्वं मे'' जन्म से मैं ब्राह्मण हूँ। गोस्वामीजी के तात्पर्य को कुछ भी नहीं समझनेवाले प्रलापी वाल्मीकिजी के लिए घोषित करे कि विनयपत्रिका में वाल्मीकिजी को 'किरात' कहा गया है तो वे किरात ही थे; अन्यान्य रामायणों ने उन्हें ब्राह्मण बताकर अपराध किया है ! योगभाष्य १।५ में स्पष्ट लिखा है- ''न खलु शालग्रामे किरातशतसंकीर्णे प्रतिवसन्नपि ब्राह्मणः किरातो भवति'' किरातक्षेत्र में किरातों के मध्य रहने से कोई ब्राह्मण किरात नहीं हो जाता।

अन्ततः क्षमा करेंगे- केवल मैं ही नहीं; पूरा सनातनसमाज स्वामी करपात्रीजी का ऋणी है। नहीं चाहते हुए भी स्वामीजी के अपमान को देख-सुनकर चुप रह जाना अपराध होता। एतदर्थ मेरी शब्दसुमाञ्जलि स्वामीजी को समर्पित करते हुए यथाधिकार अपने कर्तव्य का निर्वहण कर रहा हूँ। धर्मशास्त्रनिष्ठ सहृदय निश्छल विद्वानों से मेरा निवेदन है कि भगवती शबरीसम्बन्धी मेरे इस संस्थापन को यथासमय पढ़ें-समझें और अवश्यमेव यथाशास्त्र सार्थक विचार प्रदान करें। मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ; मन्थनपूर्वक आपके सम्मान्य विचारों का सम्मान करूँगा। सीताराम सबका मङ्गल करें॥।

॥ सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम ॥